षष्ठोऽध्यायः ६

सप्तमोऽध्यायः ७

अष्टमोऽध्यायः ८

॥ समाप्तेयमनुक्रमणिका ॥

प्रस्तावना.



श्लोकः—यथा नोदयित्वा मतिं मे दयालुः
स यो देववर्यो निबंधं चकार ॥
तथा धर्मरक्षानिमित्तं यतीनां
सदा पाठकानां करोत्वस्य धर्मे ॥ १ ॥

आशा यह है कि-परम दयालु ब्रह्मादिकदेवतोंमें श्रेष्ठ अर्थात् सर्वातर्यामी जो श्रीकृष्ण भगवान्जी जैसे मेरी बुद्धिको मेरके संन्यासियोंके धर्मकी रक्षाके वास्ते इस ग्रंथको करतेभये हैं तैसे इस ग्रंथके पठनकरनेवालोंकी बुद्धिको सो श्रीकृष्ण भगवान्जी सदा धर्ममें जोड़ें ॥ १ ॥
प्रार्थना यह है कि-आजकल बहुतसे वेषधारियोंमें वैराग्यकी शिथलतासें संन्यासधर्मोंका लोप देखके अनेक श्रुति स्मृति पुराणोंके श्लोक संग्रह करके यह वैराग्यभास्कर नाम ग्रंथ संस्कृत भाषाटीकाके सहित रचा गया है; जिसके प्रथम अध्यायमें कालके नियमसें विना जब वैराग्य होय तभी संन्यास करे यह वर्णन करा है. दूसरे अध्यायमें ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्ण संन्यासके अधिकारी कथन करे हैं तीसरेमें वैराग्यका कारण विषयोंमें दोषदृष्टि वर्णन करी है. चतुर्थमें वैराग्यके स्वरूप फलादिक निरूपण करे हैं. आगेके चार अध्यायोंमें संन्यासके धर्म वर्णन करे हैं. तिनमेंसें पंचम अध्यायमें धन स्त्रीका त्याग षष्ठेमें निषिद्ध अन्नका वर्णन सप्तममें ग्रहणकेयोग्य अन्नका निरूपण, अष्टममें शमदम वेदांतका श्रवणादिक संन्यासीके मुख्यधर्मोंका निरूपण करा है. कहां तक इस ग्रंथकी प्रशंसा लिखें देखनेसे विरक्त महात्मोंको आनंद देगा. अतीव अद्भुत अपूर्व यह ग्रंथ है ऐसा ग्रंथ अबतक किसीनेभी संग्रह नहीं करा और वैराग्यप्रकृ-

रण वैराग्यशतकादिकोंसेंभी अधिक वैराग्यके वास्ते अनेक युक्ति दृष्टांत प्रमाण लिखे हैं जिनके श्रवणमात्रसेंही अत्यंत पामरोंकोभी वैराग्य होजाय ताते श्रेष्ठपुरुषोंको अवश्यही यह ग्रंथ देखनेयोग्य है तथा इस ग्रंथके अंतमें अष्टक लिखे हैं वेहभी श्रीकृष्णचंद्रजीके अनुरागियोंको बहुत आनंदके देनेवाले हैं कछू दिन पीछे इनकी व्याख्याभी करी जायगी ॥ इति ॥

शुभम्भूयात् ।



श्रीः ।

वैराग्यभास्करः ।

ॐ श्रीकृष्णभगवते नमः ।

अथ मूलमंगलाचरणम् ।

सजलघनशरीरं पीतकौशेयधारं
शरणगतभयारिं वेत्रवंशीकराब्जम् ॥
अजनिमरणमीशं भक्तकंजाहरीशं
सुखदपरदयालुं वेदवेद्यं नतोऽस्मि ॥ १ ॥

अथ संस्कृतव्याख्याया मंगलाचरणम् ।

बटुं रामौ कृष्णौ कपिलमनुपौ धर्मतनुजौ सुवैद्यं श्रीहंसं ध्रुववरदबुद्धौ पृथुहरी॥हयग्रीवं यज्ञौ ऋषभकमठौ मत्स्यवपुषं कुमारं कल्किं वाऽत्रिमुनितनुजं नौमि नृहरिम् ॥१॥ अस्यार्थः-बटुं वामनं रामौ दशरथात्मजपरशुरामौ कृष्णौ श्रीवासुदेववेदव्यासौ मनुपः मनुपतिः धर्मतनुजौ नरनारायणौ यज्ञौ वराहरुचिपुत्रौ कुमारं सनकादिकम् अत्रिमुनितनुजं दत्तात्रेयम् एतान् विष्णोश्चतुर्विंशत्यवतारानहं नौमि नमस्करोमि अथ स्वविरचितवैराग्यभास्करग्रंथस्य किंचित्किंचिद्व्याख्यां करोमि। अथादौ ग्रंथनिर्विघ्नसमाप्त्यर्थं वृद्धव्यवहारतश्च वेदाज्ञया च नमस्कारात्मकं चाशीर्वादात्मकं श्लोकाभ्यां मंगलं कुर्वे।तदुक्तं सांख्यशास्त्रे।मंगलाचरणं शिष्टाचारात्फलदर्शनाच्छ्रुतितश्चेति तथाश्रुतिश्च समाप्तिकामो मंगलमाचरेदिति अथादौ छंदसास्वेष्टदेवश्रीकृष्णभगवतो

वेदांतैर्विबुधश्चयः स्वकृपया वो धार्मिकान्पातु सः ॥ २ ॥

अथ श्रीगुरूणामर्द्धेच्छंदसा नमस्कारात्मकं चार्द्धछंदसाऽऽशीर्वादात्मकं मंगलं करोमि ज्ञानादीनिति। ज्ञानादीन्दासांतांश्च ज्ञानदासनामधेयानित्यर्थः ज्ञानेदासतीतिज्ञानदासः श्रीकृष्णः दासृदानेकर्मण्यण् तदुक्तंभगवता । ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयांति तइति तद्रूपानादरे बहुवचनं मम दैन्यभंजनकरान् अज्ञानजन्यदुःखनाशकान् प्लवान् पोतानिति सविबुधो देवो वो युष्मानस्य पठनश्रवणकर्तृन्पातु यो वेदांतैस्तत्त्वमस्यादिभिः स्वकृपयाच भक्तात्मभावंगतो भक्तैः स्वाभेदेन ज्ञातो भक्तानां विमलं मोक्षसुखमातनोति नन्वीश्वरस्य मंगलाचरणं भवतु ईश्वरत्वाच्च गुरुणांतु निष्फलं जीवत्वादिति । न च वाच्यं गुरूणामीश्वररूपत्वात्तेषां भक्तेः सफलत्वाच्च तथाहि श्रीभागवते श्रीकृष्णभगवद्वाक्यम् ॥ आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्॥ न मर्त्यबुद्ध्या सूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥नाहमिज्याप्रजातिभ्यां तपसोपशमेनच ॥ तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरुशुश्रूषया यथा ॥ तथाच नारदवाक्यं तत्रैव । यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ ॥ मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुंजरशौचवत् ॥ तथा श्रुतिश्च । यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ॥ तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशंते महात्मनः ॥ इति ॥ २ ॥

अब अर्द्धछंदकरके श्रीगुरुनका नमस्कार रूप मंगलाचरण तथा अर्द्धछंदकरके आशीर्वादरूप मंगलाचरण करते हैं ज्ञानशब्द है आदिमें जिनके नामके तथा दासशब्द है अंतमें जिनके नामके अर्थात् ज्ञानदास है नाम जिनका तिनकों नमस्कार कर्ताहूं. कैसे हैं ते गुरु जो मेरे अज्ञानजन्य दुःखकों नष्टकरनेवाळे हैं और श्रीकृष्ण भगवानमें धारण करा है मन जिनोंनें उपदेश करके ज्ञानरूपके देनेवाळे हैं तथा

संसारसमुद्रसें पार करनेकों जहाजरूप है ॥ ज्ञानदासशब्दके अर्थका दोहा ॥ दास नाम है दानका, जानदेंहि जो देव॥ज्ञानदास तिन जानियें, सोस्ति हरिः स्वयमेव ॥ इस ग्रंथके पठनकरनेवाले तथा श्रवणकरने वाले जो तुम धर्मात्माहो तुमारी रक्षा सो परमेश्वर करें जो वेदांतशास्त्रोंकरके तथा अपनी कृपाकरके भक्तोंकि आत्मभावकों भासहूए अर्थात् भक्तोंकरके अभेद ज्ञातहूए तिनके निर्मल मोक्षसुखकों विस्तारे हें ॥ शंका ॥ ईश्वरका मंगलाचरण होवो. तिसकों समर्थ होनेसें परंतु गुरुका मंगलाचरण तो निष्फल है तिनकों जीव होनेसें । समाधान । गुरु ईश्वररूप है तिनकी भक्तिभी सफली है इस वास्ते निष्फल नहीं सोभागवतमें श्रीकृष्णचंद्रजीका वाक्य है. आचार्यकों मेरा रूप जाने अपमान कभी नहीं करे गुरुमें मनुष्यबुद्धि करके दोषारोपण नहीं करे क्योंकि सर्व देवतारूप गुरु है अर्थात् सर्वदेवतोंकी पूजासें जो फल होवे है सो. एक गुरुकी सेवासें होवे है ॥ और ऐसा मैं अपनी पूजासें उत्तम जातिसें तपसें ब्रह्मचर्यसें प्रसन्न नहीं होवों जैसे सर्व जीवोंका आत्मारूपमें गुरुकी सेवा करके प्रसन्न होवों ॥ तैसें नारदमुनिजीनेंभी कहा है श्रीभागवतमें साक्षात् भगवान्‌रूप ज्ञानदीपकके देनेवाले गुरुमें मिथ्या मनुष्यबुद्धि जिसकी है तिसका शास्त्रश्रवण सर्व निष्फल है जैसे हस्तीका स्नान व्यर्थ है ॥ और गुरुभक्तिकी सफलता श्रुतिमें कही है जिस पुरुषकी परमेश्वरमें परम भक्ति है और जैसी परमेश्वरमें है तैसी गुरुमेंभी है तिसी महात्माकों वेदके अर्थ कथन करेहूए यथावत् भासते हैं तातें गुरुमंगलाचरण करनेयोग्य है ॥ २ ॥

वैराग्यभास्करं ग्रंथं गुरूणां कृपया यथा ॥
गुणानां न प्रसिद्धयर्थं स्वशांत्यर्थं करोम्यहम् ॥ ३ ॥

वैराग्यभास्करमिति अथ गुरुशिष्यसंवादेन वैराग्यभास्करनामधेयं ग्रंथं करोमि यद्यपि मया स्वशांत्यर्थं क्रियते तथापि यद्यन्येपि य एनं पठिष्यंति तदा तेषामपि १ स्वार्थो भविष्यति सस्वार्थोयं सच्छास्त्रेषु वैराग्यादि:

साधनवतः संन्यास उक्तस्तैर्विना संन्यासान्मरणं श्रेष्ठमुक्तं तथाहि भागवते वानप्रस्थधर्मेषु श्रीभगवद्वाक्यम् ॥ यदासौ नियमेऽकल्पो जरया जातवेपथुः ॥ आत्मन्यग्नीन् समारोप्य मच्चित्तोऽग्निं समाविशेत् ॥ यदा कर्मविपाकेषु लोकेषु निरयात्मसु ॥ विरागो जायते सम्यग्न्यस्ताग्निः प्रव्रजेत्ततः ॥ तथा तत्रैव नारदवाक्यं युधिष्ठिरं प्रति ॥ यदाऽकल्पः स्वक्रियायां व्याधिभिर्जरयाथ वा। आन्वीक्षिक्यां वा विद्यायां कुर्यादनशनादिकमिति ॥ अथेदानीं केचिद्वैराग्यादिसाधनसंपत्तिं न संपाद्य संन्यासधर्मांश्चाश्रुत्वा धर्मांश्चाश्रुत्वा किंचिद्गृहे धननाशादिदुःखं दृष्ट्वाऽथवा पितृमातृस्त्र्यादिभिर्विवादं कृत्वा स्वाधिकारं विनैव संन्यासं कुर्वंति ते तत्र द्रव्यसंग्रहादिविषयेषु लोलुपाः संतो ज्ञानाभ्यासं न कृत्वोभयभ्रष्टा भवंति। अस्मिन्ग्रंथेतु संन्यासाधिकारीच वैराग्यस्य हेत्वादयश्च संन्यासधर्माः समुक्ता अतोऽस्य संन्यासात्पूर्वावलोकनेनोभयभ्रष्टत्वं न जायत इति ॥ ३ ॥

अथ श्रीगुरुकी यथावत् कृपासें गुरुशिष्यके संवादकरके वैराग्यभास्कर नाम ग्रंथकों करते हैं सो केवल अपने चित्तकी शांतिवास्ते करते हैं कछू विद्यादिकगुणोंकी प्रसिद्धिके वास्ते नहीं करें हैं यद्यपि हम अपने चित्तकी शांतिवास्ते करते हैं तथापि इतरबी जो पुरुष इसकों देखेंगे तिनकोंबी बहुत लाभकी प्राप्ति होवेगी सो लाभ यह है,- श्रेष्ठ शास्त्रोंमें वैराग्यादिक साधनोंवाले पुरुषोंकों संन्यास कहाहै और तिन वैराग्यादिक साधनोंसें विना संन्याससें मरण श्रेष्ठ कहा है श्रीभागवतमें श्रीकृष्णचंद्रजीनें कहा है,-यदि वानप्रस्थ पंचाग्नि आदिक अपने धर्मोंमें असमर्थ होवे वा वृद्धावस्थाकरके शरीरमें कंपनवाला होवे तो अग्निहोत्रकरनेकी अग्नियोंकों समाप्त करके मेरे विषे चित्तकों जोडके अग्निविषे प्रवेश करके जल जाय अरु यदि कर्मोंका फलरूप ब्रह्मलोकतक वियोगकालमें

नरकके तुल्य दुःख देनेवाले लोकोंमें सम्यक् वैराग्य होवे तो अमिसाध्यकर्मोंका त्याग करके संन्यास करलेवे इति । और तिसी भागवतमें नारदजीनेंबी कहा है राजा युधिष्ठिरकों,-यदि अपने वानप्रस्थ धर्मोंके करनेमें असमर्थ होवे रोगकरके वा वृद्धावस्थाकरके आत्मविचारमें असमर्थ होवें तो अनशनादिक मरणेके उपाय करके शरीरका त्याग करदेवे. तात्पर्य यह है,-अपने धर्मका त्याग तथा विना वैराग्यसें संन्यास कबी नही करे ॥ और आज कलतो वैराग्यादिक साधनोंको नहीं सिद्ध करके संन्यासके धर्मोंकोबी नहीं श्रवण करके वा गृहमें धनका नाशादिक दुःखोंकों देखके वा पिता आदिक बांधवोंके साथ विरोध करके अपने अधिकारसें विना संन्यास करते हैं ते सन्यासी धनसंग्रहादिक विषयोंमें संसक्तिवाले हुए ज्ञानके वास्ते अभ्यास न करके उभयभ्रष्ट होते हैं. और इस ग्रन्थमें तो संन्यासका अधिकारी वैराग्यके स्वरूपादिक तथा संन्यासके धर्म सम्यक् वर्णन करे हैं तातें संन्यास करनेसें पूर्व इस ग्रंथके देखनेसे उभयभ्रष्टता नहीं होवे है इति ॥ ३ ॥

वैराग्यभास्कर इतो हृदि खे प्रचारी
नित्यं विरक्तहृदयांबुजहर्षकारी ॥
येषां सदा वसति हृन्निलये कुनारी
तेषां च धीकुमुदिनी प्रमदप्रहारी ॥ ४ ॥

अस्य नामानुसारिकर्माह। वैराग्यभास्कर इति । इतोऽयं सार्वविभक्तिकस्तस् हृदि खे हृदयाकाशे हृन्निलये हृदयगृहे प्रमदप्रहारी प्रकर्षेण हर्षहरणशीलः ॥ ४ ॥

अब इस ग्रन्थके नामानुसार कर्म दिखावे हैं ॥ जैसे सूर्य आकाशमें विचरता हूआ कमलोंकों खिलावे हैं और कुमुदिनीयोंकों कुमलावे हैं तैसें यह वैराग्यभास्कर पुरुषोंके हृदयाकाशमें विचरता हूआ विरक्तोंके हृदयरूप कमलकों नित्यहीं हर्ष प्राप्त करे हैं अरु जिनके हृदयरूप मंदिरमें

सदा स्त्रीनिवास करे है तिन विषयासक्तोकी बुद्धिरूप कुमुदिनीके हर्षको नष्ट करे है॥ ४ ॥

ताबद्धनादयो दीपा मुमुक्षुकार्यकारिणाम् ॥
वैराग्यभास्करो यावत्प्रीतिकरा न दृश्यते ॥ ५ ॥

अत्यन्तविरक्तानां कमलसदृशहृदां स्वत एव वैराग्यभास्करे प्रीतिर्भवति अन्यत्र चन्द्रज्योत्स्नासदृशविषयेषु प्रीत्यभावाच्च अत्यन्तविषयासक्तानां कुमुदिनीसदृशबुद्धीनां तस्मिन्कदापि प्रीतिर्न भवति अन्यत्र चन्द्रज्योत्स्नासदृशविषयेषु प्रीतिमत्त्वादित्याशयेनोक्तम् इदानीं रात्रौ लिप्यादिकार्यकारिसदृशानां मुमुक्षूणां तस्यावलोकनमात्रेणैव दीपसदृशविषयत्यागपूर्विका तत्रैव प्रीतिर्भवतीत्याशयेनाह तावदिति । तावत् धनादयो दीपाः प्रीतिकरा भवंति यावद्वैराग्यभास्करो न दृश्यत इति योजना । आदिशब्देन नारीगृहादीनां ग्रहणम् ॥ ५ ॥

अत्यत विरक्त कमलसदृश हृदयवालेयोकी तौ वैराग्यभास्करमे प्रीति स्वाभाविकहोवे है क्यों कि चद्रमाकी चादनी सदृश विषयोमे प्रीतिके अभाव होनेसे और अत्यत विषयासक्त कुमुदिनी सदृश बुद्धिवालियोंकी वैराग्यभास्करमे कबीबी प्रीति नही होवे है क्योकि चद्रमाकी चादनी सदृश विषयोंमे प्रीतिवाले होनेसे इस आशयसे ऊपरके चतुर्थ श्लोकमे कहा है और रात्रिमे लिखत आदिक कार्योंके करनेवालियोंके सदृश मुमुक्षुयोंकी वैराग्यभास्करके देखने मात्रसे ही दीपक सदृश विषयो के त्यागपूर्वक वैराग्यभास्करमे प्रीति होवे है। अब इस आशयसे कहिते है ॥ जैसे रात्रिमे लिखतादिक कार्य करनेवालेयोको तवतकही दीपक प्रीति करनेवाले होवे है जबतक सूर्य नही देखा तैसे तवतक ही मुमुक्षुको धननारी आदिक विषय प्रीति करनेनाले होवे है जबतक वैराग्यभास्कर नही देखा ॥ ५ ॥

कश्चिच्छिष्यः समागत्य पप्रच्छ न्यासिनं वरम् ॥
संन्यासं को हि धारयेत् कस्मिन्काले भवेद्यतिः ॥ ६ ॥

कश्चिदिति । समागत्य साष्टांगनमस्कारपूर्वकं गुरवे पुष्पादिकान् समर्प्य तं गुरुं न्यासिनं यतिं वरं पक्षपातशून्यं वक्ष्यमाणं पप्रच्छ पृष्टवान् तस्य प्रश्नं संन्यासमित्यर्द्धेन । ननु कलौ संन्यासो निषिद्धः कथं शिष्यो गुरुं पप्रच्छ संन्यासं को हि धारयेदिति तथाहि स्मृतिः । अग्निहोत्रं गवालंभं संन्यासं पलपैतृकम् । देवराच्च सुतोत्पत्तिं कलौ पंच विवर्जयेदिति ॥ सत्यम् । परंतु तत्कालोऽधुना नागतो यस्मिन् संन्यासो निषिद्धस्तथा हि स्मृतिः । यावद्वर्णविभागोऽस्ति यावद्वेदः प्रवर्त्तते । संन्यासमग्निहोत्रं च तावत्कुर्यात्कलौ युग इति ॥

कोईक शिष्य किसी संन्यासी महात्मा गुरुपास आकर साष्टांग नमस्कारपूर्वक पुष्पादिक उत्तम वस्तु समर्पण करके पक्षपातसें रहित तिस संन्यासी महात्मासें पूछता भया हे भगवन् संन्यासकों कौन धारण करे अर्थात् चारवर्णोंमें किसका अधिकार है तथा किसकालमें संन्यास ग्रहण करे अर्थात् तीनों अवस्थोंमें कौनसी अवस्थामे ग्रहण करे! शंका, कलियुगमे तो संन्यासका ग्रहण निषेधकरा है स्मृतिमें सोशिष्य कैसे पूछता भया कि कौन संन्यास करे अरु कब करे सो स्मृति यह है, अग्निहोत्र, गोमेधयज्ञ तथा संन्यास पितरोको मांसका पिंड पति मरे पीछे देवरसे पुत्रकी उत्पत्ति कलियुगमें यह पांच वस्तुका त्याग करे । समाधान–हे वादी! तेरी शंका ठीक है परंतु सोकाल अबी नहीं आया जिसमें संन्यास निषेध कहा है सो काल स्मृतिमें कहा है । जबतक चार वर्णोंका विभाग दीसे है जबतक वेद पृथिवीमें है तबतक संन्यास तथा अग्निहोत्र यह दोनों कलियुगमें करलेवे सो वर्णोंका विभाग तथा वेद दीसे है तांते अबी संन्यासका ग्रहण योग्य है ॥ ६ ॥

तमुवाच गुरुस्तज्ज्ञो यदुक्तं वेदवित्तमैः ॥

त्रैवर्णिको भवेन्न्यासी निर्वेदे च भवेद्यतिः ॥ ७ ॥

तमुवाचेति । तज्ज्ञःसंन्यासाधिकारिणंतस्य काले च ज्ञानातिसतं शिष्यं वक्ष्यमाणवाक्यमुवाच।किमुवाचेत्याशंक्य वेदवित्तमैर्यत्स्वशास्त्रेषूक्तं तदुवाचेति। तैः किमुक्तमित्याशंक्याह त्रैवर्णिक इत्यर्द्धेन। त्रैवर्णिको ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः निर्वेदे वैराग्यकाले तथा श्रुतिश्च। यदहरेव विरजेत्तदहरेव प्रव्रजेदिति ॥ ७ ॥

संन्यासके अधिकारी तथा तिसके कालकों जाननेवाला सो श्रीगुरु तिस शिष्यके प्रति कहिते भये, प्रश्न–सो क्या कहिते भये, उत्तर–जो वेदके जाननेवालियोंनें अपनी स्मृतियोंमें कहा है सो कहिते भये, प्रश्न-तिनोनें क्या कहा है, उत्तर–ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यकों त्रैवर्णिक काहिते हैं सो त्रैवर्णिक संन्यासका अधिकारी है और जब वैराग्य होवे तबी संन्यास ग्रहण करे तैंसे श्रुतिमेंबी कहाहै जिस दिन वैराग्य होवे तिसी दिन संन्यास करदेवे ॥ प्रश्न–ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य किनकों कहिते है, उत्तर–जिसके परंपरा पिता पितामहादिकोंसे स्वस्ववर्णनुसार गायत्री यज्ञोपवीतादिक संस्कार नष्ट नहीं हुए तिनकों कहिते हैं तिनकाही संन्यासमें अधिकार है और जिन ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके सोलय १६ वर्ष बाईस २२ वर्ष चौवीस २४ वर्षसें पूर्व यथाक्रमसें संस्कार नहीं हुए पश्चात् तिनकी व्रातसंज्ञा है तिनका संन्यासमें अधिकार नहीं है. यद्यपि प्रायश्चित्तपूर्वक संस्कार करके तिनकाबी तिसमें अधिकार है परंतु जबतक विवाह नहीं करा तबतक प्रायश्चित्तसें व्रातकी शुद्धि होवे है विवाहके पश्चात् व्रातकी शूद्र संज्ञा होवे है तथा व्रातके संतानकी बी शूद्रसंज्ञा होवेहै तिनकी प्रायश्चित्तसें बी शुद्धि नहीं होवे है. तात्पर्य यह है कि; व्रातका त्रैवर्णिकोंके साथ विवाहादिक संबंधोंका स्मृतिमें निषेध करा है परिशेषसें शूद्रोंके साथ विवाह करनेसें तिसकी सहित संतानके शूद्र संज्ञा स्मृतिमें कही है, मनुस्मृति श्लोक ॥ नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपि हि कर्हिचित् । ब्राह्मान्यौनांश्च संबंधानाचरेद्ब्राह्मणैः सह ॥ अर्थ,–ब्राह्मणैः

यह ब्राह्मणपद क्षत्रिय वैश्यका उपलक्षण है अर्थात् विधिपूर्वक यथावत् शास्त्ररीतिसें प्रायश्चित्त करके जबतक ते व्रात पवित्र नहीं हूए तबतक तिनके साथ पढने पढानेका तथा विवाहादिक कोई संबंध आपत्कालमें वी नहीं करे ॥ श्लोक ॥ हीनजातिस्त्रियं मोहादुद्वहंतो द्विजातयः । कुलान्येव नयंत्याशु ससंतानानि शूद्रताम् ॥ अर्थ,–जो त्रैवर्णिक मोहकरके शूद्रीकों विवाहते हैं ते तात्काल अपनी कुलोंकों संतानोंके सहित शूद्रभावकों प्राप्त करें है ॥ श्लोक ॥ वृषलीफेनपीतस्य निःश्वासोपहतस्यच । तस्यां चैव प्रसूतस्य निष्कृतिर्न विधीयते ॥ अर्थ–शूद्री स्त्रीके ओष्ठरस पीनेवालेकी तथा उसके श्वासका स्पर्श करनेवालेकी तथा शूद्रीसे उत्पन्न हूएकी शुद्धि शास्त्रमें नहीं कथन करी है अर्थात् तिस पितापुत्रकों प्रायश्चित्तोंसें पुनः त्रैवर्णिकभावकी प्राप्ति नहीं होवे है ॥ ७ ॥

शिष्य उवाच ।

नन्नु केचिद्वदंत्येवं मनुस्वायंभुवादयः ॥
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ ८ ॥

नन्विति । ननु प्रश्ने । ऋणानि ऋषिपितृदेवतानामपाकृत्य निवार्य्य मनो मोक्षे निवेशयेत् मोक्षाय संन्यासं कुर्यात् । तथा हि मनुः–अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्मतः । इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ ८ ॥

हे भगवन्! कोईक मनुस्वायंभुवादिक ऋषि इस प्रकार कहिते हैं कि,–ऋषि पितर देवता इन तीनोंके ऋणकों निवृत्त करके पश्चात् मोक्षके वास्ते संन्यास करे सो मनुका वाक्य यह है। विधिपूर्वक वेदोंकों पठन करके तथा पुत्रोंकों अपनी स्त्रीसें उत्पन्न करके अपनी समर्थानुसार यज्ञोंसे देवतोंका पूजन करके पश्चात् मनकों मोक्षविषे जोडे अर्थात् संन्यास करे ॥ ८ ॥

श्रीगुरुरुवाच ।

भो सौम्य ते वदंत्येवं वैराग्यरहितात्मने ॥

अनृणं हि विरक्तस्य चाक्रमं मुनिसत्तमाः ॥ ९ ॥

भोसौम्येति। वैराग्येण रहितमात्मा मनो यस्य तस्मै अविरक्तायेत्यर्थः । अनृणंमृणत्रयाभावंमक्रमं ब्रह्मचर्याद्गार्हस्थ्यं ततो वानप्रस्थ्यं ततः संन्यास एवं यः क्रमस्तस्याभावं वदंति यदा वैराग्यं भवेत्तदैव त्यजेदित्यर्थः ॥ ९ ॥

हे प्रियशिष्य ! ते मनुआदिक-जो इस प्रकार कहिते हैं ते वैराग्यसें रहित पुरुषकों कहिते हैं और विरक्तपुरुषकों तौ श्रेष्ठमुनि श्रीवेदव्यासजी आदिक ऋणत्रयके अभावकों तथा ब्रह्मचर्यसें गृहस्थाश्रम तिससे पश्चात् वानप्रस्थाश्रम तिससें पीछे संन्यास इस प्रकारके क्रमके अभावकों बी कहिते हैं अर्थात् जब वैराग्य होवे तबी त्याग करजाय ॥ ९ ॥

श्रीभागवते

देवर्षिभूताप्तनृणां पितृणां न किंकरो नायमृणी च राजन्॥
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुंदं परिहृत्य कृत्यम्॥

अथानृणे जनकं प्रति करभाजनवाक्यमाह-देवर्षिभूताप्तनृणामिति । आप्ताः पोष्याः कुटुम्बिनः शरण्यमाश्रयं कर्तुं योग्यमिति ॥ १० ॥

अब ऋणोंके अभावमें जनकके प्रति करभाजन ऋषिका वाक्य कहिते हैं। हे राजन् जो पुरुष मनवाणी शरीर करके आश्रय करणेके योग्य मुक्तिके देनेवाले भगवत्की शरणकों प्राप्त भया है कर्ताभावका त्याग करके सो पुरुष देवता ऋषि भूत कुटुंबके लोक और साधारण मित्रादिक तथा पितर इन सर्वका नं किंकर है न ऋणी है ॥ १० ॥

दत्त्वा वरमनुज्ञातो गुरोः कामं यदीश्वरः॥
गृहं वनं वा प्रविशेत्प्रव्रजेत्तत्र वा वसेत् ॥ ११ ॥

अथ क्रमाभावं चतुर्भिः श्लोकैः साधयति। प्रथमं युधिष्ठिरं प्रति नारदवाक्यमाह दत्त्वावरमिति । ब्रह्मचारी यदीश्वरः

समर्थस्तदा कामं यथेष्टं वरं गुरुदक्षिणां दत्त्वा तत्र वसेत् नैष्ठिकब्रह्मचारी भवेत् यदि वैराग्यवांस्तदा प्रव्रजेत् संन्यसेत् ॥ ११ ॥

अब क्रमके अभावकों चार श्लोकोंकरके सिद्ध करें हैं प्रथम भागवतमें युधिष्ठिर प्रति नारदजीका वाक्य कहिते हैं ब्रह्मचारी वेद पठन करके गुरुकी आज्ञाकों पायके यदि समर्थ होवे तो गुरुकों वांछित गुरुदक्षिणा देके अपने गृहमें जाय वा वनकों जाय वा नैष्ठिक ब्रह्मचारी हो जाय यदि विरक्त होवे तौ संन्यास करलेवे ॥ ११ ॥

गृहं वनं वोपविशेत्प्रव्रजेद्वा द्विजोत्तमः ॥
आश्रमादाश्रमं गच्छेन्नान्यथा मत्परश्चरेत् ॥१२॥

तस्मिन्नेवार्थे उद्धवं प्रति भगवद्वाक्यमाह गृहमिति । ब्राह्मणक्षत्रियवैश्या एव द्विजास्तेषूत्तमो वशीकारवैराग्यवानित्यर्थः । तथाच स्मृतिः-विप्रक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयोद्विजाः इति । नान्यथा अनाश्रमी न भवेत् कश्चिदाश्रममाश्रित्य तिष्ठेदित्यर्थः । तथाच स्मृतिः । अनाश्रमी नैव तिष्ठेद्दिनमेकं द्विजोत्तम इति ॥ १२ ॥

अब तिसी अर्थमें उद्धव प्रति श्रीकृष्णचंद्रजीका वाक्य कहिते हैं,-ब्रह्मचारीकी इच्छा होवे तौ गृहको जाय वा वनको जाय यदि द्विजोत्तम होवे अर्थात् द्विजसंज्ञावाले जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य हैं तिनमें उत्तम यथा वशीकार संज्ञा वैराग्यवाला होवे तौ संन्यास कर जाय । तीनोंकी द्विजसंज्ञा स्मृतिमें कही है,-ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र यह चार वर्ण हैं; और. शूद्रकों त्यागके आदिके तीनोंकी द्विजसंज्ञा है । अथवा क्रमसें आश्रमसें आश्रमकों ग्रहणकरे परन्तु मेरी आज्ञानुसार चलनेवाला पुरुष अनाश्रमी नहीं होय किं तु चार आश्रमोंमें किसी एककों आश्रय करके ही स्थित होय सो स्मृतिमें भी कहा है त्रैवर्णिक पुरुष एक दिनमात्रभी अनाश्रमी नहीं रहे तात्पर्य यह है कि गृहस्थाश्रम तीनों

होय है जब स्त्री मर जाय तब पुरुष चाहे दूसरा विवाह करे चाहे संन्यास करे इनमें एक किसीके ग्रहण करेसें विना अनाश्रमी होवे है. वशीकारवैराग्यका लक्षण आगे चतुर्थअध्यायमें कथन करेंगे इति ॥ १२ ॥

व्यासस्मृतिः ।

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वानप्रस्थोऽथवा पुनः ॥
विरक्तः सर्वकामेभ्यः पारिव्राज्यं समाश्रयेत् ॥ १३ ॥

ब्रह्मचारीति । सर्वकामेभ्यः लोकपरलोकभोगेभ्यो विरक्तः पारिव्राज्यं संन्यासमिति ॥ १३ ॥

ब्रह्मचारी होय वा गृहस्थ होय वा वानप्रस्थ होय इन तीनोंमें जो सर्व लोक परलोकके भोगोसें विरक्त होय सो संन्यासकों आश्रय करे॥ १३॥

अंगिरस्स्मृतिः ।

संन्यसेद्ब्रह्मचर्येण संन्यसेद्वा गृहादपि ॥
वनाद्वा संन्यसेद्विद्वानातुरो वाथ दुःखितः॥ १४ ॥

संन्यसेदिति । आतुरो मरणकाले क्लेशं प्राप्तः दुःखितो ज्वरादिभिः पीडितः विद्वान् संन्यासं कृत्वा मृत्युं प्राप्तः पुरुषो ब्रह्मलोकं प्राप्नोतीति विज्ञाता, तदुक्तं कपिलदेवेन- संन्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कंठगतैरपि । ससूर्यमंडलं भित्त्वा ब्रह्मलोके महीयत इति ॥ १४ ॥

ब्रह्मचर्यसेंही संन्यास करे वा गृहस्थाश्रमसें करे वा वानप्रस्थाश्रमसें करे मरणके समे क्लेश करके आतुर हूआ वा ज्वरादिकोंकरके दुःखी हूआ बी संन्यास करे विद्वान् अर्थात् संन्यास करके मरणेसें ब्रह्मलोककी प्राप्ति होवे है इस प्रकार जानता हूआ संन्यासके ग्रहण मात्रसें ब्रह्मलोककी प्राप्ति कपिलदेवजीनें बी कही है । प्राणोंके कंठविषे प्राप्त हूए अर्थात् मरणकालमें बी मैने संन्यास करा है जो पुरुष ऐसे कहिता है सो सूर्य-

मंडलको भेदन करके ब्रह्मलोकमें पुजता है अर्थात् उत्तरायणमार्गद्वारा ब्रह्मलोकको प्राप्त होवे है इति ॥ १४ ॥

श्रीगुरुरुवाच।

मातापित्रोश्च हे पुत्र व्रजति वदतोः सुतः ॥
दृश्यते हि तथा सर्वैः शुकवामसुरादिपु ॥ १५ ॥

अथ श्रीगुरुः शिष्यवैराग्योत्पादनाय परमकरुणया शुकादीनुदाहरणान् कृत्वाह मातृपित्रोरिति। हे पुत्रेति वदतोर्मातापित्रोस्तयोर्निरादरं कृत्वा सुतः प्रव्रजति। नन्वेवं तयोर्निरादरः कुत्रापि न दृश्यते इति चेद्दृश्यते कुत्र शुकवामसुरादिपु शुकदेववामदेवादिपु इति ॥ १५ ॥

अब श्रीगुरुजी शिष्यके वैराग्यकी उत्पत्तिवास्ते परमकृपा करके शुकदेवादिकोंका दृष्टांत देके कहिते है । हे पुत्र! इस प्रकार पुकारते मातापिताका निरादर करके पुत्र संन्यास करलेते है सो इस प्रकार मातापिताका निरादर करके संन्यासका करना शुकदेव वामदेवादिकोंमें सर्व पुरुषोंने शास्त्रद्वारा देखा है इति ॥ १५ ॥

यो नरः संततिं कृत्वा न त्यजेद्यदि धार्म्मिकः ॥
दोपो भवति वै तस्य चैवं वदति वैदिकी ॥ १६ ॥

यो नर इति ॥ धार्म्मिको वेदोक्तधर्मज्ञस्त्रैवर्णिकः संततिमेकसंतानमात्रम् अत्र गुरोरयमभिप्रायो यदि ब्रह्मचर्याद्वैराग्यं भवेत्तदा तस्मादेव संन्यसेत् यदि तत्र भवेत्तदा गार्हस्थ्यं कृत्वा पुत्रं वा कन्यामुत्पाद्य जरत्कार्यादिवत्संन्यसेत् यदि संततिमुत्पाद्यापि न त्यजेत्तदा तस्य महान् दोपो भवतीति वैदिकीश्रुतिर्वदति। तथा च श्रुतिः यदुप्रजा निऋतिमाविवेश इति ॥ १६ ॥

प्रथम यदि वैराग्य होवे तो ब्रह्मचर्यसें ही संन्यास करले यदि ब्रह्मचर्यमें

वैराग्य नहीं होवे तौ गृहस्थाश्रम करके एक संतान पुत्र वा कन्याकों उत्पन्न करके संन्यास करलेवे यदि वेदोक्त धर्मके जाननेवाला जो त्रैवर्णिक होकर संतानको उत्पन्न करकेबी संन्यास नहीं कर्ता तिसकों पापकी प्राप्ति होवे है इसी प्रकार वेदकी श्रुति बी कहिती है। सोश्रुति यह है। बहुते पुत्रकन्यावाला पुरुष नरककों प्राप्त होवे है इति ॥ १६ ॥

श्रुतिश्च।

पतिर्जायां प्रविशति गर्भो भूत्वेह मातरम्॥
तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते॥
तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः॥१७॥

अथ स्वोक्तौ श्रुतिं प्रमाणयति पतिरिति। पतिरेव जायां नारीं वीर्यरूपेण प्रविशति। गर्भो बालो भूत्वा इह मातुरुदरे तिष्ठतीति शेषः।तस्यां भार्यायां पतिर्नवो नवीनो भूत्वा जायते तत् तदा जाया भार्या जनयतीति जाया मातृतुल्या भवति कदा यत् यदा अस्यां भार्यायां प्रथमं स्वमातुः सकाशादुत्पद्य पुनर्भार्यायाः सकाशात्पुत्र रूपेण जायते। तथा च भारते आदिपर्वणि। आत्माऽऽत्मनैव जनितः पुत्र इत्युच्यते बुधैः। तस्माद्भार्यां नरः पश्येन्मातृवत्पुत्र मातरमिति ॥ १७ ॥

अब गुरु अपने वाक्यमें श्रुति प्रमाण देवें हैं। पति वीर्यरूपकरके स्त्रीमें प्रवेश करे है पश्चात् बालक होकर माताके उदरमें स्थित होवे है पश्चात् दशमें मासमें नवीन बालकरूप होकर पति तिस स्त्रीद्वारा उत्पन्न होवे है तब वो स्त्री माताके सदृश होवे है। जब प्रथम अपनी माताद्वारा उत्पन्न हूआ पश्चात् दुसरीवार पुत्ररूपकरके आपही स्त्रीद्वारा उत्पन्न होवे है। सो महाभारतके आदिपर्वमें बी कहा है। पुरुष जिस हेतुसें अपने आपकरके ही आप उत्पन्न होवें है अर्थात् पिताही पुत्ररूपकरके उत्पन्न होवे है तिसी हेतुसें पुरुष पुत्रवाली अपनी स्त्रीकों माताके सदृश देखे अर्थात् कामबुद्धि उसमें नहीं करे इति ॥ १७ ॥

मनुस्मृतिः ।

पतिर्भार्यां संप्रविश्य गर्भो भूत्वेह जायते ॥
जायायास्तद्धि जायात्वं यदस्यां जायते पुनः॥१८॥

इति श्रीवैराग्यभास्करे संन्यासे क्रमाभाववर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १ ॥

पतिरिति । अस्यार्थस्तु अनंतरश्रुत्युक्ततुल्यः ॥ १८ ॥

इति श्रीवैराग्यभास्करसंस्कृतव्याख्यायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इस श्लोकका अर्थ पूर्वली श्रुतिके समान ही है ॥ १८ ॥

इति श्रीवैराग्यभास्करभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

शिष्यप्रश्नः स्मृतिभ्याम् ।

प्रथमादाश्रमाद्वापि विरक्तो भवसागरात् ॥
ब्राह्मणो मोक्षमन्विच्छंस्त्यक्त्वा संगान्परिव्रजेत् ॥ १ ॥

अथ यत्प्रथमाध्याये गुरुणोक्तं त्रैवर्णिको भवे इयासीति तत्र शिष्यो गुरुं पृच्छति प्रथमादिति द्वाभ्याम्।ब्राह्मणोभवसागरात् संसारसमुद्राद्विरक्तः सन् परिव्रजेत् संन्यसेदिति१

प्रथम अध्यायमें जो गुरुनें कहा था कि,-त्रैवर्णिक संन्यासका अधिकारी है तिसमें शिष्य दो स्मृति प्रमाण देके पूछे है, ब्राह्मण मोक्षकी इच्छा करता हुआ ब्रह्मचर्यसेंही संसारसमुद्रसें विरक्त हुआ विषयोंका संग त्याग करके संन्यास करे इति ॥ १ ॥

याज्ञवल्क्यस्मृतिः ।

चत्वारो ब्राह्मणस्योक्ताः स्वाश्रमाः श्रुतिचोदिताः॥

क्षत्रियस्य त्रयः प्रोक्ता द्वावेको वैश्यशूद्रयोः ॥ २ ॥

चत्वार इति । चत्वार आश्रमा ब्राह्मणस्योक्ताः संन्यासं विना त्रयः क्षत्रियस्य आदिद्वाभ्यां विना वैश्यस्य शूद्रस्य त्वेक गार्हस्थ्यमेवेति ॥ २ ॥

ब्रह्मचर्य गृहस्थाश्रम वानप्रस्थाश्रम संन्यास यह चार आश्रम श्रुतिकी आज्ञानुसार स्मृतियोंमें ब्राह्मणके कथन करें हैं । संन्यासकों त्यागके तीन क्षत्रियके, संन्यास वानप्रस्थसें विना दूसरे दो वैश्यके कथन करे हैं; और शूद्रका तो एक गृहस्थाश्रमही कहा है इति ॥ २ ॥

शिष्य उवाच ।

इत्यादिस्मृतिवाक्यानि ब्राह्मणस्याधिकारिताम् ॥
बाहूरुजातयोर्न्यासेऽनधिकारं वदंति च ॥ ३ ॥

इत्यादिस्मृतिवाक्यानीति । संन्यासे विप्रस्याधिकारितां बाहूरुजातयोः क्षत्रियवैश्ययोस्तत्रानधिकारं च वदंति ॥ ३ ॥

हे भगवन्! इत्यादिक स्मृतिवाक्य संन्यासमें ब्राह्मणकी अधिकारिताकों तथा क्षत्रिय वैश्यके अनधिकारकों कहिते हैं इति ॥ ३ ॥

श्रीगुरुरुवाच ।

बहूनीह प्रमाणानि संन्यासेऽपि त्रिकर्तृके ॥
यत्र तु ब्राह्मणः प्रोक्तः स तयोरुपलक्षणम् ॥ ४ ॥

अथोत्तरमाह बहूनीति । त्रयः कर्त्तारो यस्य तस्मिंस्त्रिकर्तृके संन्यासे बहूनि प्रमाणानि संति । यत्र यस्यां स्मृत्यां ब्राह्मणः संन्यासाधिकारी प्रोक्तः क्षत्रियवैश्ययोर्नो विधानं न च निषेध उक्तस्तत्र तु स विप्रस्तयोः क्षत्रियवैश्ययोरुपलक्षणं ज्ञापको ज्ञेयः । अत्र श्रुतिर्दृष्टांतत्वेन ज्ञेया तथा

हि । जायमानो ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवान् जायत इति। यथाच विप्र ऋणवत्त्वे तयोरुपलक्षणम् ऋणवत्त्वे त्रयाणां समानत्वात्तथा संन्यासेऽपि ज्ञेयमिति ॥ ४ ॥

अब शिष्यके प्रश्नका उत्तर कहिते हैं। हे शिष्य तीनो वर्णोंके संन्यासमें बहुत शास्त्र प्रमाण हैं सो तूं श्रवण कर। जिस स्मृतिमें ब्राह्मण संन्यासका अधिकारी कहा है किंतु क्षत्रिय वैश्यका विधान निषेध, नहीं है तिस स्मृतिमें ब्राह्मणपद क्षत्रियवैश्यके लखाणेवाला है अर्थात् क्षत्रियवैश्यका अधिकारबी तिस स्मृतिमें जान लेना; जैसे श्रुतिमें कहा है। जन्मसें ही ब्राह्मण तीन ऋणोंके सहित जन्मे है। सो इस श्रुतिमें ब्राह्मणपद ऋणीभावमें क्षत्रियवैश्यकाबी लखाणेवाला है क्योंकि ऋणीभाव तीनोंमें समान है तैसे संन्यासमेंबी ब्राह्मण नाम दोनोंका उपलक्षण है इति ॥ ४ ॥

वार्तिककारः।

त्रयाणामविशेषेण संन्यासः श्रूयते श्रुतौ ॥
यदोपलक्षणार्थं स्याद्ब्राह्मणग्रहणं तदा ॥ ५ ॥

स्वोक्तौ वार्तिककारवाक्यं प्रमाणयति त्रयाणामिति। यदा यद्ब्राह्मणग्रहणं तदा तत् क्षत्रियवैश्ययोरुपलक्षणार्थं ज्ञापनार्थं त्रयाणां संन्यासेऽविशेषत्वादिति ॥ ५ ॥

अब गुरु अपने वाक्यमें श्रीमच्छंकराचार्योंके शिष्य वार्तिककारोंका वाक्य प्रमाण देवें हैं। तीनो वर्णोंका संन्यास समानहीं श्रुतिमें श्रवण करा जाता है. जो एक ब्राह्मणकाही संन्यास स्मृतिमें कहा है सो तिन दोनोंके जननिवास्ते है क्योंकि तीनोंका एक समान अधिकार होनेसें इति ५

श्रीगुरुरुवाच।

तयोर्यत्र तु संन्यासेऽनधिकारो निरूपितः ॥
स्तुत्यर्थं तत्र विप्रस्य न तु निन्दापरो हि सः॥६ ॥

.तयोरिति । यत्र स्मृतौ तयोः क्षत्रियवैश्ययोः । न च तयोर्निन्दापर इति ॥ ६ ॥

जिस स्मृतिमें क्षत्रियवैश्यका अनधिकार कहा है तिसमें ब्राह्मणकी स्तुतिके वास्ते कहा है कछू तिन दोनोंकी निंदाके वास्ते नहीं है ॥ ६ ॥

न निन्दा निन्दितुक्कुत्र संप्रवृत्ता नरोत्तम ॥
स्तुत्यर्थे च विधेयस्य त्विति न्यायानुशासनम् ७ ॥

स्ववाक्यं दृढं कर्तुं न्यायमाह न निन्देति । विधेयस्य संस्तुत्यर्थं निंदा प्रवृत्ता नत्वन्यस्य निंदार्थमिति ॥ ७ ॥

अपने वाक्यके दृढ करनेकों न्याय कहिते हैं। हे पुरुषोंमें उत्तम शिष्य! किसी स्थानमें बी निंदा निंदाकरनेकों प्रवृत्त नहीं होती किंतु विधेयवस्तुके स्तुतिके वास्ते निंदा प्रवृत्त होवे है–यह न्यायकी आज्ञा है । जिस वस्तुकी स्तुतिका प्रसंग होय तिस वस्तुको विधेय कहिते हैं इति ॥ ७ ॥

यथा भागवते भेददृष्टेर्देवा उपासिताः ॥
अघं हरंति नैवेत्थमुक्तं भगवता स्वयम् ॥ ८ ॥

यत्रैकस्य स्तुतिरन्यस्य निंदा भवति तत्र निंदायां शास्त्रस्याभिप्रायो नास्तीत्यस्मिन्नर्थे न्याय उक्त इदानीं श्रीकृष्णभगवतो वाक्यं दृष्टांतत्वेनाह यथेति । भेददृष्टिनोपासिता देवास्तस्य भेददृष्टेरघं नैव हरंतीति योजना ॥ ८ ॥

जिस स्थानमें एककी स्तुति और दूसरेकी निंदा होय है तहां निंदामें शास्त्रका अभिप्राय नहीं होय है किंतु दूसरेकी स्तुतिमें अभिप्राय होय है; इस अर्थमें पूर्वन्याय प्रमाण दिया है । अब श्रीकृष्णभगवान्जीके वाक्यकों दृष्टांतकरके दखाते हैं । देवता भेददृष्टि करके उपासना करे हूए भेददृष्टिवाले उपासकके पापकों नहीं दूरकरें हैं इस प्रकार श्रीकृष्णचंद्रजीनें दशमस्कंधमें कहा है इति ॥ ८ ॥

भागवते ।

नाग्निर्न सूर्यो न च चंद्रतारका न भूर्जलं खं श्वसनोऽथ वाङ्मनः
उपासिता भेदकृतो हरंत्यघं विपश्चितो घ्नन्ति मुहूर्त्तसेवया

यद्वाक्यं भगवतोक्तं तत्स्वयमेव दर्शति नाग्निरिति । खं माकाशः श्वसनो वायुदेवता वाङ्मनसोरप्युपासनाविषयत्वमुक्तं श्रुतौ तथाहियो वाचं ब्रह्मेत्युपास्ते मनो ब्रह्मेत्युपास्त इति विपश्चितस्तत्त्वज्ञा इति ॥ ९ ॥

जो श्लोक श्रीकृष्णचंद्रजीनें कहाहै अब तिसकों लिखके दखाते हैं। अग्नि सूर्य चंद्रमा तारे पृथिवी जल आकाश वायु वाक् मन इत्यादिक देवता भेददृष्टिकरके उपासना करे हूए भेद दृष्टि वाले उपासकके पापकों नष्ट नहीं करते और विद्वान् महात्मा तो एक मुहूर्त सेवा करे हुए पुरुषके पापको नष्ट करे हैं. इति ॥ ९ ॥

श्रीगुरुरुवाच ।

भेददृष्टेर्यदा देवा न हरंतीह दुष्कृतम् ॥
तदा किं तत्त्वविज्ञस्य तस्य पापं न विद्यते ॥ १०॥

भेददृष्टेरिति । अत्र गुरोरयमभिप्रायो यदि भेददृष्टेरघं देवा नैव हरंति तदाऽज्ञस्य कर्माणि किन्निष्फलानि भवंति निष्फलानि भवितुं त्वयोग्यानि फलश्रवणात्तथा भगवतोक्तम् । कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय इति । ननु देवा उपासिता विज्ञस्याघं हरंत्विति चेन्न तस्य कर्ममात्रेणैव संबंधो नास्ति कथं तस्याघं हरंतीति ॥ १० ॥

यदि भेददृष्टिवाले पुरुषके पापकों देवता नष्ट नहीं करते तो क्या ज्ञानवान्के पापकों दूरकरें हैं। तिसके पापकों तो दूर करना बनेंही नहीं है क्योंकि तिसका पापही कोई नहीं. तात्पर्य यह है कि, तिसका तो कर्ममात्रके साथ संबंध नहीं है और भेददृष्टिवालेके कर्म निष्फल

होनेकोंबी योग्य नहीं हैं क्योंकि गीतामें कर्मोंकी सफलता लिखी है। हे अर्जुन! अग्निआदिक देवतोंकी उपासनारूप कर्म करकेही जनकादिक अंतःकरणकी शुद्धिरूप सिद्धिकों प्राप्त हूए हैं इति ॥ १० ॥

श्रुतिः।

भिद्यते हृदयग्रंथिश्छिद्यंते सर्वसंशयाः॥
क्षीयंते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ ११ ॥

तत्त्वज्ञकर्मास्पर्शे श्रुतिमाह भिद्यत इति। हृदयग्रंथिश्चिज्जडाभेदरूपः कर्माणि संचितागामीनि दृष्टे स्वात्मत्वेन ज्ञाते परावरे ब्रह्मणीति ॥ ११ ॥

ज्ञानीका कर्मोंके साथ असंबंधमें श्रुति प्रमाण देते हैं। तिस परमात्माके अपरोक्ष ज्ञान हूए ज्ञानीकी चिज्जडग्रंथि नष्ट हो जायहे। तथा जीव ईश्वरका भेद है वा अभेद है इस प्रकारके संशयबी छेदन हो जाते हैं तथा प्रारब्धसें विना सर्वकर्मबी नष्ट होजाते हैं ॥ ११ ॥

गुरुवाक्यम्।

स्तुत्यर्थं तद्धि साधूनां न तथार्थो यथा श्रुतः॥
एवं वै तत्र विज्ञेयं विप्रन्यासार्थमेव च ॥ १२ ॥

स्तुत्यर्थमिति।यथा श्रुतार्थस्तथा नैव किंतु तद्भगवद्वाक्यं साधूनां स्तुत्यर्थं ज्ञेयम् एवं तत्र तस्यां स्मृतौ यो द्वयोः संन्यासेऽनाधिकार उक्तः स विधेयभूतविप्रस्य संन्यासार्थं न तु तयोर्निषेधार्थम् अयं भावः। यस्य कस्मिन्नपि शास्त्रे विधेयता नास्ति तस्यैव रागप्राप्तस्य शास्त्रेषु निषेधो भवति यथा परस्त्रीगमनादीनाम् तयोस्तु संन्यासाधिकारे बहूनि प्रमाणानि संत्यतस्तयोर्निषेधो नैव भवतीति ॥ १२ ॥

अब पूर्वले श्लोकोंका तात्पर्य कहिते हैं। इस श्रीकृष्णचंद्रजीके श्लोकमें जैसे अक्षरोंका अर्थ जो दीसे है सो तौ बने नहीं है किंतु तिसका

तात्पर्य साधु महात्मोंकी स्तुतिमें है कछू देवतोंकी उपासनाके निष्फलतामें नहीं है; इसी प्रकार जिस स्मृतिमें क्षत्रियवैश्यका संन्यासमें अनाधिकार कहा है तिस स्मृतिका ब्राह्मणके संन्यासमें तात्पर्य जानना तिन दोनोंके निषेधमें नहीं जानना। भाव यह है कि; जिस वस्तुकी किसीभी शास्त्रमें अंगीकारता नहीं है तिसी रागमात्र वस्तुका निषेध शास्त्र करें हैं जैसे परस्त्रीगमनादि । और क्षत्रियवैश्यके संन्यासके अधिकारमें तो बहुत प्रमाण हैं कछू रागमात्र तो है नहीं क्योंकि संन्यासमें विषयभोगोंके अभाव होनेसे; इस वास्ते तिन दोनोंके संन्यासके अधिकारका निषेध नहीं बने है ॥ १२ ॥

अथ वा ब्राह्मणो न्यासं कुर्यात्तत्राविचारयन् ॥
सहजत्वाच्छमादीनां यत्नसाध्यास्तयोश्च ते ॥१३॥

अथ वेति । अथ वा ब्राह्मणो मम संन्यासेऽधिकारोऽस्ति नास्ति एतद्विचारमकुर्वन् संन्यासं कुर्यात् तत्र विप्रे तत्साधनानां शमादीनां सहजत्वात् । तदुक्तं भगवता । शमो दमस्तपः शौचं क्षांतिरार्जवमेव च । ज्ञानविज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजमिति ब्राह्मणस्य मुख्याधिकारे तात्पर्यम्। ते शमादयस्तयोः क्षत्रियवैश्ययोर्यत्नसाध्या इति तयोर्गौणाधिकारे तात्पर्यमिति ॥ १३ ॥

अथ जिस स्मृतिमें तिन दोनोंके संन्यासका अनधिकार कहा है तिसका और तात्पर्यकहिते हैं । मैं संन्यास करा कि नहीं करों ऐसे विचारको न कर्ताहूआ ब्राह्मण संन्यासको करलेवे क्योंकि तिसमें संन्यासके साधन शमदमादिकोंको स्वभावक होनेसे। सो गीतामें भी कहा है। मनका वश करनारूपशम इंद्रियोंका वशकरनारूप दम तथा तप अंतर बाहिरके भेदसें दो प्रकारका शौच तथा क्षमा कुटिलताका त्याग तथा परोक्ष ज्ञान तथा विविधशास्त्रोंका ज्ञान आस्तिक स्वभाव इतने कर्म विप्रमें स्वभावक होते हैं । अर्थात् नियंत्रही तिसकों प्राप्त होजाते हैं।

इस रीतिसें तिस स्मृतिका ब्राह्मणके मुख्याधिकारमें तात्पर्य है और ते शमादिक संन्यासके साधन क्षत्रिय वैश्यमें यत्नसाध्य हैं राजस स्वभाववाला होनेसे इस रीतिसें तिन दोनोंके गौणाधिकारमें तात्पर्य है कछू तिन दोनोंके अनधिकारमें तात्पर्य नहीं इति ॥ १३ ॥

तुष्टो भव त्वमेवोक्ता यत्र तयोरयोग्यता ॥
ग्रहणे दण्डमात्रस्य न तु चतुर्थकाश्रमे॥ १४ ॥

तुष्टो भवेति।अथवा यत्र स्मृतौ तयोः संन्यासेऽयोग्यतोक्ता तद्दण्डग्रहणमात्रे ज्ञेया न तु चतुर्थाश्रमग्रहणे इति हेवादिंस्त्वं तुष्टो भवेति दिक्। विस्तारस्तु स्वामिकैलासपर्वतकृत्त्रैवर्णिकसंन्यासकासारे द्रष्टव्य इति ॥ १४ ॥

अब तिस स्मृतिका और तात्पर्य कहिते हैं जिस स्मृतिमें क्षत्रियवैश्यके संन्यासमें अयोग्यता कही है अर्थात् अनधिकारता कथन करी है सो केवल दंडमात्रके ग्रहणमें कही है कछू संन्यासमें अनधिकारता नहीं कही। तात्पर्य यह है कि; एक दंडग्रहण ब्राह्मणका अधिक होवे है और विधिधर्म सर्व सामानही हैं सो हेवादिन् तूं इतने करके प्रसन्न हो दंडमात्रकी अधिकता विप्रकी हमनें मानलीनी है। यह प्रसंग हमनें तो संक्षेपसें वर्णन करा है विस्तार स्वामिकलासपर्वतकृत् त्रैवर्णिकसंन्यासकासार नाम ग्रंथमें देखलेना इति ॥ १४ ॥

याज्ञवल्क्यस्मृतिः।

अकार्यकारिणां दानं वेगो नद्याश्च शुद्धिकृत् ॥
शोध्यस्य मृच्च तोयं च संन्यासोथ द्विजन्मनाम् ॥१५॥

अथास्मिन्नध्याये यद्गुरुणोक्तं बहूनीह प्रमाणानि संन्यासेऽपि त्रिकर्तृक इति तानि प्रमाणान्याह।अकार्यकारिणामिति। यथाऽकार्य्यकारिणां निषिद्धकर्तृणां दानं शुद्धिकृत् शोध्यस्य ताम्रपात्रादेः मृत् मृत्तिका तथा द्विजन्मनां ब्रा-

ह्मणक्षत्रियवैश्यानां संन्यासः शुद्धिकृत तथा च कात्यायन सूत्रम् । त्रयाणां वर्णानां वेदमधीत्य चत्वार आश्रमा इति युक्तिरपि, यथा गायत्र्यां त्रयाणामधिकारो स्ति.तथा मेषमं त्रस्यापि गायत्रीरूपत्वादतः मेषमंत्रोच्चारणपूर्वकसंन्यासेऽपित्रयाणामधिकारो स्त्येवेति ॥ १५ ॥

इसी अध्यायमें जो पूर्व गुरुनें कहाथा कि,- तीनों वर्णोंके सन्यासमें बहुत ममाण हैं अब सो ममाण लिखके दिखावे हैं जैसे. निषिद्धकर्म करनेवालियोंकी दान शुद्धि करे है तथा नदीकी शुद्धि जलकावेग करे है तथा ताम्रादिक धातुके पात्रोंकों मृत्तिका जल शुद्ध करें है तैसे तीनों वर्णोंकों संन्यास शुद्धिके करनेवाला है । सो कात्यायनऋषिके सूत्रमेंबी कहा है । तीनोंवर्णोंके वेदअध्ययन करके चारआश्रम है । और युक्ति-बी इसमें है जैसे गायत्रीमें तीनोका अधिकार है तैसें गायत्रीरूप मेष-मंत्रके उच्चारणपूर्वक संन्यासमेंबी तीनोंका अधिकार सभवे है इति ॥१५॥

स्मृतिः ।

ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यस्ततो गच्छेद्वनं कृती ॥
संन्यसेद्बंधनाशाय सर्वभूतदयापरः ॥ १६ ॥

ब्राह्मण इति। ततो ब्रह्मचर्याद्गार्हस्थ्याद्वा कृती ज्ञानाय प्रयत्नशीलः बंधनाशाय अज्ञाननिवृत्तय इति ॥ १६ ॥

ब्राह्मण हो वा क्षत्रिय हो वा वैश्य हो गृहस्थाश्रमका त्याग करके वनवास करे अथवा सर्वजीवोंपर दयावाला हुआ अज्ञानकी निवृत्तिके वास्ते ज्ञानविषे प्रयत्नवाला हूआ संन्यास करलेवे इति ॥ १६ ॥

ब्रह्मांडपुराणे ।

त्रैवर्णिकानां संन्यासो विद्यते नात्र संशयः ॥
शिखायज्ञोपवीतानां त्यागपूर्वकदंडयुक् ॥ १७ ॥

त्रैवर्णिकानामिति । यत्तु पूर्वं विप्रस्यैव दंडग्रहणमुक्तं त-

दुर्जनतोषन्यायेनोक्तमत्र तु प्रत्यक्षमेव त्रयाणां दंडग्रहणमस्ति ॥ १७ ॥

तीनोंवर्णोंका संन्यास बहुत शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है इसमें कछू संशय नहीं है सो संन्यास शिखायज्ञोपवीतके त्यागपूर्वक एक दंडके ग्रहणपूर्वक होवे है और पूर्व जो केवल एक विप्रकोंही दंडका ग्रहण कहाथा सो वादीके संतोषवास्ते कहाथा इहाँ तौ प्रत्यक्षही तीनोंकों दंडग्रहण कहा है इति ॥ १७ ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते ।

वैराग्योत्पत्तिमानेव संन्यासे परियुज्यते ॥
रागवान्न तु विप्रोऽपि वेदवेदांगवित्तमः ॥ १८ ॥

त्रैवर्णिकेष्वपि वैराग्यवानधिकारी, विषयरागी तु विप्रोऽपि तत्रानधिकारीत्याह वैराग्योत्पत्तिमानिति । वेदांगानि व्याकरणाद्यानि तेषां वित्तमः साकल्येन जानाति तथा विप्रोपि चेद्रागवान् विषयेषु रागी तदा संन्यासे न परियुज्यते तत्राधिकारी न भवतीति ॥ १८ ॥

तीनवर्णोंमेंबी विरक्तही संन्यासका अधिकारी है विषयरागी ब्राह्मणबी तिसका अधिकारी नहीं । अब यह कहिते हैं जिसकों वैराग्यकी उत्पत्ति भयी है सोईही संन्यासमें जोडा जाता है अर्थात् विरक्तही संन्यासका अधिकारी है और वेदोंकों तथा व्याकरणादिक वेदके अंगोंकों भली प्रकार जानेबी है तथा जातिका ब्राह्मणबी है परंतु यदि विषयोंमें रागवाला है तौ तिसका संन्यासमें अधिकार नहीं है इति ॥ १८ ॥

महाभारते ।

धनान्यपत्यदारांश्च रत्नानि विविधानि च ॥
पंथानं पावकं हित्वा जनको मौंड्यमास्थितः ॥ १९

जनकराजस्य संन्यासं वक्तुं राजधर्मेषु युधिष्ठिरं प्रत्यर्जुन-

वाक्यमाह धनानीति चतुर्भिः। यो जनको धनादीन्परित्यज्य मौंड्यं परमहंसवेषमास्थितस्तं भार्या ददर्शेत्युत्तरेणान्वयः। अपत्यं पुत्रो दारा भार्याः पावकपंथानमग्निहोत्रादिगृहस्थधर्ममिति ॥ १९ ॥

अथ जनकराजाके संन्यास कहिने वास्ते राजधर्मोंमें युधिष्ठिर प्रति अर्जुनका वाक्य कहिते हैं चार श्लोकों करके । जो जनक धन पुत्र भार्या नानाप्रकारके रत्न अग्निहोत्रादिक गृहस्थके धर्मोंको त्यागके मुंडित हुआ है अर्थात् परमहंसवेष जिसनें धारण करा है तिस जनकराजाकों भार्या देखती भयी इस प्रकार दूसरे श्लोकके साथ इस श्लोकका अन्वय है इति ॥ १९ ॥

तं ददर्श प्रिया भार्या भैक्षवृत्तिमकिंचनम् ॥
धान्यमुष्टिमुपासीनं निरीहं गतमत्सरम् ॥ २० ॥

तं ददर्शेति । तं जनकराजं निरीहं भोगेच्छारहितं परोत्कर्षासहनं मत्सरस्तच्छून्यं धान्यमुष्टिमुपासीनमन्नमुष्टिं स्वीकुर्वाणमिति ॥ २० ॥

तिस जनकराजाकों प्यारी स्त्री देखतिभयी भिक्षावृत्ति है जिसकी तथा कछूभी जिसके पास संग्रह नही है तथा अन्नकी मुष्टिकों ग्रहण कररहा है तथा किसी भोगकीबी जिसकों इच्छा नही है परपुरुषोंकी उत्कर्षताका असहनरूप मत्सरबी जिसमें नही है इति ॥ २० ॥

उत्सृज्य राज्यं भैक्षार्थे कृतबुद्धिं नरेश्वरम् ॥
विदेहराजमहिषी दुःखिता यदभाषत ॥ २१ ॥

उत्सृज्येति। उत्सृज्य परित्यज्य विदेहराजमहिषी जनकराजस्य भार्या यद्वाक्यं वक्ष्यमाणमभाषत उक्तवतीति २१॥

राज्यकों त्यागके भिक्षा मागनेकों करी है बुद्धि जिसनें तिस राजाका जनकराजाकी राणी दुःखी होई कहितीभयी इति ॥ २१ ॥

य इमां कुंडिकाम्भिद्यात्रिविष्टब्धं च यो हरेत् ॥
वासश्चापि हरेत्तस्मिन्कथं ते मानसं भवेत् ॥२२ ॥

तस्या वचनमाह य इमामिति । यः कश्चित्ते तवेमां कुण्डिकां मृन्मयजलपात्रं भिद्याच्च त्रिविष्टब्धं त्रिदंडमिति नीलकंठव्याख्या । वासो वस्त्रं च ते यो हरेत्तस्मिन्पुरुषे ते मानसं चित्तं कथं भवेत् यदि क्रोधो जायते तदा किं ते संन्यास इति रोषोक्तिरिति भावः । अत्र त्रैवर्णिकानां त्रिदंड ग्रहणमपि स्फुटं ज्ञेयम् ॥ २२ ॥

तिसराणीका वचन कहिते हैं । यदि जो कोई तेरे इस मृत्तिकाके पात्रकों भेदन करे वा तेरे त्रिदंडकों तथा वस्त्रकों छीनलेवे तब तिस पुरुषमें तेरा मन कैसा होय? तात्पर्य यह है कि; यदि तेरेको क्रोध उत्पन्न हूआ तौ तेरा संन्यास क्या है अर्थात् कछू नहीं; इस श्लोकसें त्रैवर्णिकोंका त्रिदंडग्रहणमेंभी अधिकार जानलेना इति ॥ २२ ॥

कूर्मपुराणे ।

पृथुपौत्राय सुशीलाय श्वेताश्वतरो मुनिः ॥
शास्त्रोक्तेन विधिना च संन्यासाश्रमं दत्तवान्॥२३॥

कौर्मे चतुर्दशाध्याये पृथुराजस्य पौत्रस्य सुशीलनामधेयस्य यानि संन्यासे वाक्यानि तान्याह पृथुपौत्रायेति त्रिभिः२३

अब पृथुराजाके पौत्रका संन्यास जो कूर्मपुराणके चतुर्दश अध्यायमें कहा है सो तीन श्लोकों करके कहिते हैं । पृथुराजाके सुशीलनाम पौत्रके तांई श्वेताश्वतर मुनि शास्त्रोक्तविधि करके संन्यासाश्रमकों देताभया इति ॥ २३ ॥

सोनुगृह्याथ राजानं सुशीलं शीलसंयुतम् ॥
शिष्यत्वे प्रतिजग्राह तपसा क्षीणकल्मषम् ॥२४ ॥

सोऽनुगृह्येति । सः श्वेताश्वतरः अनुगृह्य कृपां कृत्वा वेषं दत्त्वा शिष्यत्वे ब्रह्मविद्याया उपदेशार्थं शिष्यत्वेन जग्राह स्वीकृतवानिति ॥ २४ ॥

सो श्वेताश्वतर मुनि सुशीलनाम राजाकों दया करके वेष देके पश्चात् ब्रह्मविद्याके उपदेशवास्ते शिष्यभाव करके ग्रहण करता भया। कैसा है सो राजा सात्विकी स्वभावकरके संयुक्त है तथा तप करके नष्टहुए हैं पाप जिसके इति ॥ २४ ॥

संन्यासिकं विधिं कृत्स्नं कारयित्वा विचक्षणः ॥
ददौ तदैश्वरं ज्ञानं स्वशाखाविहितं व्रतम् ॥ २५ ॥

संन्यासिकमिति । विचक्षणो ब्रह्मविद्यायां कुशलः व्रतं नियममिति ॥ २५ ॥

ब्रह्मविद्यामें निपुण जो श्वेताश्वतर मुनि सो संन्यासकी सर्वविधिकों करायके तब तिस राजाकों अपने वेदकी शाखाके नियमानुसार ईश्वरके स्वरूपका ज्ञान देतामया ॥ २५ ॥

महाभारते ।

अथ वैकोऽहमेकोऽहमेकैकस्मिन् वनस्पतौ ॥
चरन्भैक्ष्यं मुनिर्मुंडः क्षपयिष्ये कलेवरम् ॥ २६ ॥

राजधर्मेषु युधिष्ठिरेण निर्वेदात्संन्यासायोद्योगं कृत्वा यानि वाक्यान्युक्तानि तान्याह अथेति सार्द्धचतुर्भिः । वनस्पतौ वृक्षे भैक्ष्यं चरन् फलाहारं कुर्वन् मुण्डः मुंडितः कलेवरं देहम् ॥ २६ ॥

राजधर्मोंमें युधिष्ठिरनें विरागकरके संन्यासके वास्ते संकल्प करके जो वचन कथन करे हैं सो साढेचार श्लोकोंकरके दिखाते हैं । अथवा एकला एकला हुआ एक एक वृक्षमें भिक्षा कर्ता हुआ अर्थात् वृक्षोंके फलोंको भोजन कर्ता हुआ मुंडित मुनि हुआ अर्थात् परमहंससंन्यासी

हुआ शरीरकों समाप्त करूंगा । शरीरकों समाप्त करूंगा इस पदोकों आगेवी एक एक श्लोकके साथ जोड लेना इति ॥ २६ ॥

पांशुभिः समपध्वस्तः शून्यागारप्रतिश्रयः ॥
वृक्षमूलनिकेतो वा त्यक्तसर्वप्रियाप्रियः ॥ २७ ॥

पांशुभिरिति।पांशुभिः रेणुभिः समपध्वस्तः लिप्तः शून्यागाराः वनस्थकंदरादयस्तानाश्रितः वृक्षमूलानि निकेतानि गृहा यस्य सोहं क्षपयिष्ये कलेवरमिति पूर्वेणान्वय एवमग्रेऽपि संबंध इति ॥ २७ ॥

धूडी करके लिप्त हुआ तथा शून्य जो वनमें कंदरा आदिक गृह हैं तिनमें निवासकर्ता हुआ अथवा वृक्षोंके मूलमें निवासकर्ता हुआ तथा प्रियाप्रिय पदार्थोंकों त्यागकर्ता हुआ शरीरकों समाप्त करूंगा इति॥२७॥

नशोच्यन्नप्रहृष्यंश्च तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः ॥
निराशी निर्ममो भूत्वा निर्द्वंद्वो निष्परिग्रहः॥ २८॥

न शोच्यन्निति । निराशी ऐहिकामुष्मिकभोगतृष्णारहितः निर्ममः प्राप्तकौटवस्त्रकमंडल्वादौ ममत्वहीन इति२८

भोजनादिकोंकी अप्राप्तिकालमें शोच नहीं कर्ता हुआ तथा तिनकी प्राप्तिमें प्रसन्न नहीं होता हुआ अपनी निंदा स्तुतिमें सम हुआ लोक परलोकके भोगोंकी तृष्णासें रहित हुआ कंथा कमंडलु आदिकोंमें ममतासें रहित हुआ शीत उष्ण आदिक द्वंद्वोंकों सहारता हुआ तथा शरीरके निर्वाहसें अधिक संग्रह नहीं कर्ता हुआ शरीरकों समाप्त करूंगा इति ॥ २८ ॥

आत्मारामः प्रसन्नात्मा जडांधबधिराकृतिः ॥
अकुर्वाणः परैः कांचित्संविदं जातु केरपि॥
जंगमाजंगमान्सर्वानविहिंसंश्चतुर्विधान् ॥ २९ ॥

आत्माराम इति। आत्मन्येव रमते क्रीडत इत्यात्मारामः प्रसन्नचित्तश्च जातु कदाचिदपि कैरपि परैः संविदं संवादमकुर्वाणः चतुर्विधानंडजादिजीवानिति ॥ २९ ॥

स्त्रीआदिकोंमें क्रीडाकों त्यागके अपने आत्मामेंही क्रीडावाला हूआ तथा फलादिकोंके भक्षण करकेही प्रसन्नचित्त हूआ तथा अंतरसे सर्वजानके बी बाहिरसें जड अंध बधिरोंकी न्यांई हूआ तथा इतर पुरुषोंके साथ किसी व्यवहारक परमार्थक संवादकों बी नहीं कर्ता हूआ तथा पक्षिआदिक अंडज मनुष्यआदिक जरायुज कृमिआदिक स्वेदज वृक्षादिक उद्भिज यह चार खाणिरूप जो जंगम स्थावर जीव हैं तिन सर्वकी हिंसा न कर्ता हूआ शरीरकों समाप्त करूंगा इति ॥ २९ ॥

श्रीगुरुरुवाच ।

अधिकारोऽस्ति चेन्नेह क्षत्रियस्य नृपात्मजः ॥
कथं चकार संकल्पं स्वाधर्मे धर्मवत्कविः ॥ ३० ॥

अधिकार इति । यदि क्षत्रियस्येह संन्यासे अधिकारो नास्ति तदा नृपात्मजो युधिष्ठिरः स्वस्याऽधर्मरूपसंन्यासे स्वधर्मवत्कथं संकल्पं चकार। कविः धर्मज्ञः सन् अतस्तस्याधिकारो स्त्येव यतः संकल्पं कृतवानिति ॥ ३० ॥

यदि क्षत्रियका संन्यासमें अधिकार नहीं है तो धर्मके जाननेवाला युधिष्ठिर अपनेकों अधर्मरूप संन्यासमें धर्मकी न्यांई कैसे संकल्प कर्ता भया? भाव यह है कि; तिसका संन्यासमें अधिकारथा तबी तिसनें संकल्प करा है इति ॥ ३० ॥

महाभारते

न मे वागनृतं प्राह नाधर्मे धीयते मतिः ॥
एवं चैव वदत्यंबा मम चैव मनोगतम् ॥ ३१ ॥

ननु युधिष्ठिरेण संकल्पमात्रं कृतं न तु संन्यासो धृतोऽ

होय है. उक्तवेदविधिसें विना केवल गृहस्थाश्रमका त्यागरूप संन्यास विदुरआदिक शूद्रोंविषेभी देखा जाय है इति ॥ ३२ ॥

श्रुतिश्च ।

वैराग्यमासाद्य तु पापयोनिः
शूद्रोऽपि संन्यासमुपेत्य मोक्षम् ॥
प्राप्नोति पापं तु विधूय विप्रः
संन्यासमेत्य ननु मुच्यते वै ॥ ३३ ॥

शूद्रस्याचिह्नसंन्यासे श्रुतिं प्रमाणयति वैराग्यमिति । पापयोनिः शूद्रोऽपि प्रथमं वैराग्यमासाद्य प्राप्य पापं विधूय हित्वा ततः संन्यासमेत्य प्राप्य मोक्षं प्राप्नोति । विप्रः संन्यासमेत्य निश्चयेन मुच्यतेऽत्र न कोऽपि संशय इति ॥ ३३ ॥

अब शूद्रके अचिह्नसंन्यासमें श्रुति प्रमाण कहिते हैं । पापयोनि शूद्रभी प्रथम वैराग्यकों प्राप्त होकर पापको नष्ट करके पश्चात् संन्यासकों प्राप्त होकर मोक्षकों प्राप्तहोय है और विप्र संन्यासकों प्राप्त होकर मोक्षको प्राप्त होयहै इसमें क्या कहिना है अर्थात् विप्र संन्यासी तौ निश्चय करके मुक्त होय है इति ॥ ३३ ॥

महाभारते ।

धर्मराजा च तत्रैनं संचिस्कारयिषुस्तदा ॥
दग्धुकामोऽभवद्विद्वानथ वागभ्यभाषत ॥ ३४ ॥

विदुरस्याचिह्नसंन्यासं वक्तुं भारतोक्तां तस्य कथामाह धर्मराजेति त्रिभिः । धर्मराजा युधिष्ठिरः तत्र वने एनं विदुरशरीरं संचिस्कारयिषुः पारलौकिककर्म कर्तुमिच्छुः वाक् आकाशवाणी ॥ ३४ ॥

अब विदुरके अचिह्न संन्यासके कथनवास्ते महाभारतोक्त तिसकी

कथा कहिते हैं। राजा युधिष्ठिर तहां वनमें इस विदुरकी परलोकसंबंधी कर्म करनेकी इच्छावाला हूआ तिसके शरीरके दग्धकरनेकी इच्छा-वाला होता भया; पश्चात् युधिष्ठिरकों आकाशवाणी कहिती भयी ॥३४॥

भो भो राजन्न दग्धव्यमेतद्विदुरसंज्ञकम् ॥
कलेवरमिहैवं ते धर्म एष सनातनः ॥ ३५ ॥

तस्या वचनमाह भो भो इति द्वाभ्याम्। ते त्वया यत्सं-न्यासिनो देहदाहाकरणं तदेष सनातनो धर्मः ॥ ३५ ॥

अब तिस आकाशवाणीका वचन कहिते हैं। हे राजन्! हे राजन्! यह विदुरका शरीर तैंने नहीं दग्ध करना संन्यासीका शरीर दाह नहीं करना यह सनातनधर्म है इति ॥ ३५ ॥

लोकाः संतानका नाम भविष्यंत्यस्य भारत ॥
यतिधर्ममवाप्तोऽसौ नैव शोच्यः परंतप ॥ ३६ ॥

इति श्रीवैराग्यभास्करे त्रैवर्णिकसंन्यासवर्णनं
नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

लोका इति। संतानका ब्रह्मलोकांतरगताः। अत्र प्रसंगा-द्यतेर्देहदाहे दोषोऽपि ज्ञेयस्तदुक्तं धर्मसिंधौ।यदि स्नेहाद्यतेर्दा-हं यतिं चांद्रायणं चरेत्। यतिमरणे सपिण्डानां स्नानमात्रं विधीयत इति। ननु लिंगं विना संन्यासो नैव भवतीति चेन्न तदुक्तं श्रीमच्छंकराचार्यैः। हठाभ्यासो हि संन्यासो नैव काषायवाससा। नाहं देहोऽहमात्मेति निश्चयो न्यासलक्षणमिति। ननु शूद्रस्यापि सलिङ्गसंन्यासो भवत्वत्र को दोष इति चेन्मैवं तथाहि संन्यासमंत्राणां

दिकत्वात्तस्य तत्राधिकारो नास्तीति हेतोरलिंगः । तदुक्तं मनुस्मृत्यां 'नाविस्पष्टमधीयीत न शूद्रजनसन्निधौ' इति३६

इति श्रीवैराग्यभास्करसंस्कृतव्याख्यायां द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

हे युधिष्ठिर ! इस विदुरकों तो ब्रह्मलोकके अवांतर संतानकनामलोक प्राप्त होवेंगे और हे शत्रूनकों तपानेवाले ! यह विदुर तो संन्यासधर्मकों प्राप्त हूआ है, तेरेकों शोच करनेयोग्य नहीं है । इहां प्रसंगसें संन्यासीके देहके दाहमें दोषबी जान लेना तैसे धर्मसिंधुमेंबी कहा है । यदि संन्यासीका पुत्र वा शिष्य स्नेहकरके तिसके शरीरकों दाह करे तो एकमासका चांद्रायणव्रत करे; संन्यासीके मरे पश्चात् तिसके पुत्रादिक बांधवोंकों केवल स्नानमात्रही करनेयोग्य है और अधिक गंगा पिंडादिक नहीं करना ॥ शंका–चिह्नसें विना संन्यासही नहीं बने है. समाधान–चिह्नसें विनाबी संन्यास बने है सो श्रीमत्शंकराचार्योंनें कहा है । हठका जो अभ्यास है अर्थात् विषयोंका त्याग करके आत्मविचारमें जो तत्पर होना है यहबी संन्यासही है; केवल काषायवस्त्रोंके धारणका नाम संन्यास नहीं है । मैं देह नहीं हूं किंतु मैं आत्मा हूं यह जो निश्चय है यहबी संन्यासहीका लक्षण है ॥ शंका–शूद्रकाबी संन्यास सचिह्न होवो इसमें क्या दोष है । समाधान–संन्यासके. मंत्रोंकों वैदिक होनेंसें और शूद्रका वेदमें अधिकार नहीं है इसवास्ते अचिह्न कहा है । तिसकी वेदमें अनधिकारिता मनुस्मृतिमें कही है । वेद पाठ करनेवाला अस्पष्ट नहीं करे अर्थात् कंठमें पाठ नहीं करे तथा शूद्र पुरुषके समीपबी नहीं करे ॥ ३६ ॥

इति श्रीवैराग्यभास्करभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्यायः समाप्तः ॥ २ ॥

शिष्य उवाच।

त्वया प्रकथितं स्वामिन्वैराग्यं न्यासकारणम् ॥
कथं भवेत्तु वैराग्यं कारणं वद मे प्रभो ॥ १ ॥

त्वयेति। प्रथमाध्याये त्वयोक्तमतो वैराग्यस्य कारणं मे मह्यं त्वं वदेति ॥ १ ॥

हे स्वामिन्! आपनें प्रथमअध्यायमें संन्यासका कारण वैराग्य कहा था; अब वैराग्यकी प्राप्ति किस प्रकार होय तांते हे प्रभो! तिसका कारण मेरेताई आप कथन करीये इति ॥ १ ॥

श्रीगुरुरुवाच।

दोपदृष्ट्या भवेदाशु गृहपुत्रधनादिषु ॥
तामहं संप्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ २ ॥

दोपदृष्ट्येति। आदिशब्देन नारीस्वदेहौ ज्ञेयौ। तां दोपदृष्टिं त्वं शृणुष्व श्रवणं कुरु इति ॥ २ ॥

हे शिष्य! गृह पुत्र धन स्त्री स्वदेह इनमें दोषदृष्टिसें तात्काल वैराग्य होय है. गृहादिकोंमें तिस दोपदृष्टिकों हम कहिते हैं तूं एकाग्रमन होकर श्रवण कर इति ॥ २ ॥

श्रीभागवते।

तस्माद्रजोरागविपादमन्युमानस्पृहादैन्यभयाधिमूलम् ॥
हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं नृसिंहपादं भजताऽकुतोभयम् ३

अथ दोपदृष्टिवर्णनं यावदध्यायसमाप्ति प्रथमं गृहे तामाह तस्मादिति द्वाभ्याम्। विषादः शोको मन्युः क्रोधः संसृतिचक्रवालं संसारचक्रं स्पृहा इच्छा आधिः मनःपीडा एतेषां मूलं कारणम् अकुतोभयं न कुतश्चिद्भयं यस्मिंस्तं निर्भयदं पादम् ॥ ३ ॥

प्रथम दो श्लोकोंकरके गृहमें दोषदृष्टि कहिते हैं जिस हेतुसें गृहमें मोक्ष नहीं होय है । तिसीसें हे पुरुषो ! रजोगुण तथा विषयोंमें राग शोक क्रोध मान इच्छा दीनता भय मानसीदुःख इन सर्वका मूल, अर्थात् कारण है ऐसे गृहको त्यागकर निर्भयपदके देनेवाले नृसिंह भगवान्जीके चरणोंकों भजो क्योंकि यह गृह तो संसारचक्रके देनेवाला है । इति ॥ ३ ॥

गृहारम्भो हि दुःखाय न सुखाय कदाचन ॥
सर्पः परकृतं वेश्म प्रविश्य सुखमेधते ॥ ४ ॥

यदुराजं प्रति दत्तात्रेयवाक्यमाह गृहारंभ इति । वेश्म गृहमेधते वर्धत इति ॥ ४ ॥

यदुराजा प्रति दत्तात्रेयजी कहिते हैं । गृहका जो आरंभ है अर्थात् गृहका जो बनाना है सो दुःखकेही वास्ते है कबीबी सुखके वास्ते नहीं होय है जैसे मूसोंकरके करेहूए गृहमें सर्प प्रवेश करके सुखपूर्वक बढे है इसी प्रकार मुमुक्षुकों योग्य है कि गृहका त्याग करके वनमें कंदरोंमें वास करे इति ॥ ४ ॥

पञ्चदश्याम् ।

अलभ्यमानस्तनयः पितरौ क्लेशयेच्चिरम् ॥
लब्धोऽपि गर्भपातेन प्रसवेन च बाधते ॥ ५ ॥

पुत्रदोषा विद्यारण्यस्वामिना य उक्तास्तानाह अलभ्यमान इति त्रिभिः । पितरौ मातापितरौ लब्धोऽपि मातुरुदरे आगतोपि प्रसवेन उत्पत्त्या तौ बाधते दुःखं ददातीति ॥५॥

अब पुत्रमें दोष जो विद्यारण्यस्वामिजीनें कथन करे हैं तिनकों कहिते हैं । प्रथम तो गर्भमें नहीं प्राप्त हूआ पुत्र इच्छाद्वाराही मातापिताकों चिरकालपर्यंत क्लेश देवे है । पुनः गर्भमें प्राप्त हूआबी गर्भपात-

होनेसें क्लेश देता है; गर्भपातसें बचाबी उत्पत्तिकालमें तिनकों दुःख देता है इति ॥ ५ ॥

जातस्य ग्रहरोगादिः कुमारस्य च मूर्खता ॥
उपनीतेऽप्यविद्यात्वमनुद्वाहश्च पंडिते ॥ ६ ॥

जातस्येति । निर्विघ्नेन जातोऽपि तस्य शनैश्चरमंगलादिग्रहाणां दशा रोगादिः पितरौ क्लेशयेच्चिरमिति पूर्वेण संबंध एवमग्रेपि । ततः कुमारावस्थायां मूर्खता ततो यज्ञोपवीतसंकल्पः येन केनोपनीतेपि अविद्यात्वं विद्याशून्यत्वं ततो येन केनोपायेन पंडितेपि अनुद्वाहो विवाहाप्राप्तिरिति ॥ ६ ॥

और जन्मसें पश्चात् बालकके क्रूरग्रह शनैश्चर मंगलादिक तथा रोगादिक मातापिताकों दुःख देवे हैं पश्चात् बालककी मूर्खता पश्चात् तिसके यज्ञोपवीतका संकल्प दुःख देवे है जैसे कैसे करके यज्ञोपवीत करावी पुनः विद्याका नहीं अध्ययन करना दुःख देवे है जैसे कैसे पंडितबी हूआ तिसके विवाहका नहीं होना दुःख देवे है इति ॥ ६ ॥

पुनश्च परदारादि दारिद्र्यं च कुटुंबिनः ॥
पित्रोर्दुःखस्य नास्त्यंतो धनी चेन्म्रियते तदा॥७॥

पुनरिति । अनुद्वाहे परदारादिगमनं, जातेपि विवाहे कुटुंबिनः पुत्रस्य दारिद्र्यं धनी चेदपि भवेत् म्रियते पितरौ क्लेशयेच्चिरमतः पुत्रतः पित्रोः मातपित्रोर्दुःखस्यांतो नास्तीति ॥ ७ ॥

विवाहके न होनेसें पुत्रका परस्त्रीगमनादिक दुःख देवे है विवाहके हुएबी कन्या पुत्र पौत्रवाले पुत्रकी निर्धनता दुःख देवे है जैसे कैसे करके धनीबी हूआ परंतु मरणेसें दुःख देवे है तातें मातापिताकों पुत्रके तरफसें दुःखका अंत नहीं है इति ॥ ७ ॥

अर्थानामर्जने क्लेशस्तथैव परिपालने ॥
नष्टे दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थान् क्लेशकारिणः॥८॥

धनदोषास्तेनैव ये तत्रोक्तास्तानाह अर्थानामिति । अर्थानामर्जने धनानां संग्रहे परिपालने रक्षणे व्यये अर्थापगम इति ॥ ८ ॥

अब धनमें दोष तिसी विद्यारण्यस्वामिजीनें जो कथन करे हैं सो कहिते हैं । प्रथम धनके संग्रह करनेमें क्लेश होवे है तिसी प्रकार तिसकी रक्षाकरनेमें क्लेश होवे है तथा यदि चोरादिक लेजांय तौबी दुःख होवे है तैसे विवाहआदिकोंमें खरच होनेसेंबी दुःख है तांते इस दुःख देनेवाले धनोंकों धिकार है इति ॥ ८ ॥

श्रीभागवते ।

अर्थस्य साधने सिद्ध उत्कर्षे रक्षणे व्यये ॥
नाशोपभोग आयासस्त्रासश्चिन्ता भ्रमो नृणाम् ॥९॥

तथा च भिक्षुणा ये तत्र दोषाउक्तास्तानाह अर्थस्येति नवभिः । प्रथममर्थस्य साधन आयासः सिद्धेऽपि तस्योत्कर्षे संवर्द्धन आयासः उत्कर्षेपि रक्षणे त्रासः ततो व्यये चिन्ता ततो नाशोपभोगे भ्रमो विपर्ययबुद्धिरिति संबंधः ॥ ९ ॥

तैसे भिक्षुनें जो धनमें दोष कथन करे हैं तिनकों नव श्लोकों करके कहिते हैं । प्रथम धनके संग्रहकरनेमें प्रयत्न होय है किंचित् संग्रहं हुएबी तिसकी वृद्धिके वास्ते प्रयत्न होय है किंचित् वृद्ध हुएबी तिसकी रक्षाके निमित्त भय होय है पश्चात् धनके खरचकी चिंता होय है कदाचित् तिसके नाशहुए वा खरचहुए विपर्ययबुद्धि होय है इति ॥९ ॥

स्तेयं हिंसानृतं दंभः काम क्रोधः स्मयो मदः॥
भेदो वैरमविश्वासः संस्पर्धा व्यसनानि च ॥ १० ॥

स्तेयमिति । स्तेयं चौर्यमनृतं मिथ्यासंभाषणं स्मयोऽहंकारः मदो दर्पः संस्पर्धा पराभ्युदयासहनं व्यसनानि नारीद्यूतमद्यविषयाणि त्रीणि एते पञ्चदशानर्था अर्थमूला इत्युत्तरेणान्वय इति ॥ १० ॥

चोरी हिंसा मिथ्यावचन दंभ इच्छा क्रोध अहंकार अभिमान विरोध वैरभाव सर्वके ऊपर अविश्वास ईर्षा परस्त्री द्यूत मदिराका विषय १०॥

एते पंचदशानर्था अर्थमूला मता नृणाम् ॥
तस्मादनर्थमर्थाख्यं श्रेयोर्थी दूरतस्त्यजेत्॥ ११ ॥

एते इति । एतेऽनंतरोक्ताः पञ्चदशानर्था अर्थमूला धनं कारणं येषां ते मताः तस्मादनर्थरूपं धनमर्थ इति नाममात्रं श्रेयोर्थी कल्याणेच्छुर्दूरतस्त्यजेत् किंचाद्यार्थप्राप्त्यर्थाः स्तेयादयः षडनर्थाः प्राप्तेऽर्थे स्मयादयो व्यसनैः सह नवानर्था इति ॥ ११ ॥

यह पूर्व श्लोकमें कथनकरे पंचदश १५ अनर्थ धनकारणवाले हैं तात्पर्य यह है कि इन पंचदशोमें आदिके षट् तो धनकी प्राप्ति वास्ते लोककरें हैं अंतके नव९ धनके प्राप्त हुए करें हैं जिससे धन अनर्थकी प्राप्ति करनेवाला हैं ताते अनर्थरूप अर्थनामवाले धनकों कल्याणकी इच्छावाला दूरसें त्यागे इति ॥ ११ ॥

भिद्यंते भ्रातरो दाराः पितरः सुहृदस्तथा ॥
एकास्निग्धाः काकिणिना सद्यः सर्वेऽरयः कृताः १२

भिद्यंत इति । किञ्च भिद्यंते स्नेहं त्यजन्ति । कथंभूता एकास्निग्धा एका अभिन्नप्राणा अस्निग्धा अतिप्रिया इत्यर्थः। काकिणिना विंशतिवराटिकया अरयः शत्रवः ॥ १२ ॥

किंच इस धनके वास्ते भ्राता भार्या पिता मित्र यह सर्व स्नेहकों त्यागनकर बीसकौडीके वास्ते शत्रु बन जाते हैं जो भ्रातादिक एक चित्तवाले तथाअतिप्रियथे इति ॥ १२ ॥

अर्थेनाल्पीयसा ह्यंते संरब्धा दीप्तमन्यवः ॥
त्यजंत्याशु स्पृधो घ्नंति सहसोत्सृज्य सौहृदम् १३॥

अर्थेनेति । अल्पीयसा अल्पेन धनेन संरब्धाः क्षुभिताः दीप्तमन्यवः प्रज्वलितक्रोधाः स्पृधः स्पर्धमानाः घ्नंति हिंसंति अंते दुःखकाले सौहृदं सुहृद्भावमुत्सृज्य त्यक्त्वा त्यजंतीति ॥ १३ ॥

पुनः ते भ्राता आदिक धनके विभागके समे, अल्पधन करके अर्थात् अल्प मूल्यवाली वस्तुके बांटनेमेंभी क्षोभकों प्राप्तहूए एक दूसरेको तात्काल त्यागे हैं तथा ईर्षा करते हूए तात्काल मित्रताकों त्यागके एक दूसरेकों मार पीट करने लगते हैं इति ॥ १३ ॥

लब्ध्वा जन्मामरप्रार्थ्यं मनुष्यं तद्द्विजाग्रताम् ॥
तदनादृत्य ये स्वार्थं घ्नन्ति यांत्यशुभां गतिम् १४

इह तावदर्थनिष्ठानामेतेऽनर्थाः परलोकेप्यनर्था एवैतेषामित्याह लब्ध्वेति त्रिभिः । देवप्रार्थ्यं मानुष्यजन्म लब्ध्वा प्राप्य तत्रापि द्विजाग्रतां द्विजातिषु मुख्यतां ब्राह्मणशरीरमित्यर्थः । ये स्वार्थं घ्नन्ति आत्महितं न कुर्वन्ति तेऽशुभां नारकीं गतिं यांतीति ॥ १४ ॥

धनद्वारा इस लोकमें अनर्थकी प्राप्ति कथन करी है अब धनसंग्रह करनेवालियोंकों परलोकमें अनर्थकी प्राप्ति तीन श्लोको करके कहिते हैं । देखो देवताभी जिस मानुष्यशरीरकी इच्छा करे हैं ऐसे मानुष्यजन्मकों प्राप्त होकर तिन मानुष्योंमेंभी ब्राह्मणजन्मकों प्राप्त होकर तिस उत्तम जन्मका अनादर करके अर्थात् परमेश्वरकी प्राप्तिके वास्ते प्रयत्न न करके जो पुरुष अपने हितकों नही करते ते नरकगतिकोंही प्राप्त होते है इति ॥ १४ ॥

स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं प्राप्य लोकमिमं पुमान् ॥

द्रविणे कोऽनुपज्जेत मर्त्योऽनर्थस्य धामनि॥ १५ ॥

स्वर्गापवर्गयोरिति । लोकं देहं द्रविणे धने कोऽनुषज्जेत आसक्तिं कुर्यात् धामनि गृहे इति ॥ १५ ॥

स्वर्ग तथा मुक्तिके द्वाररूप इस मनुष्यशरीरकों प्राप्त होकर ऐसा कौन पुरुष है जो अनर्थके गृहरूप धनमें आसक्ति करे इति ॥ १५ ॥

देवर्षिपितृभूतानि ज्ञातीन्बंधूंश्च भागिनः ॥
असंविभज्य चात्मानं यक्षवित्तः पतत्यधः ॥ १६ ॥

देवर्षिपितृभूतानीति । देवादयः षड् धनभागिनस्तान् असंविभज्य तेभ्यो धनभागमदत्त्वा तथा चात्मने भोगान-दत्त्वा यक्षवित्तः सर्पवद्धनपालकः अधः नरकं पतति प्राप्नो-तीति ॥ १६ ॥

देवता ऋषि पितर भिक्षुजन जातिभाई पुत्रादिक बांधव अपना शरीर इत्यादिक औरभी जो धनकेभागी हैं तिन सर्वकों विभाग न देकर सर्पकी न्यांई धनकी रक्षा कर्त्ता हूआ नरककोंही प्राप्त होवे है इति ॥ १६ ॥

कस्मात्संक्लिश्यते विद्वान्व्यर्थयार्थेहयाऽसकृत् ॥
कस्यचिन्मायया नूनं लोकोऽयं सुविमोहितः ॥ १७ ॥

कस्मादिति । विद्वान् धनदुःखाभिज्ञः अर्थेहया धनेच्छया असकृत् नित्यंप्रति कथं संक्लिश्यते क्लेशं प्राप्नोति स्वयमेव कारणं संभाव्याह नूनं निश्चितं कस्यचिदीश्वरस्येति ॥ १७ ॥

धनके दोषोंकों जानता हूआभी पुरुष किसवास्ते वारंवार व्यर्थही धनकी इच्छा करके दुःखकों प्राप्त होय है इसमें आपही भिक्षु संभावना करे है निश्चय है कि किसी परमेश्वरकी मायाकरकेही यह लोक मोहित हूआ धनके वास्ते दुःख पावे है इति ॥ १७ ॥

योगवासिष्ठे ।

मांसपांचालिकायास्तु यंत्रलोलेऽगपञ्जरे ॥
स्नाय्वस्थिग्रंथिशालिन्याः स्त्रियाः किमिव शोभनम् ॥१८॥

अथ स्त्रीदोषाः श्रीरामेण य उक्तास्तानाह मांसपांचालिकाया इति द्वाभ्याम् । मांसपुत्तलिकायाः स्त्रियाः नाड्यस्थ्यादीनां ग्रंथिरूपकुचौ ताभ्यां शालिन्याः शोभनायाः यंत्रवल्लोलेऽतिचंचलेऽगपंजरे शरीरे किं शोभनमिव न किमपीत्यर्थः ॥ १८ ॥

अथ स्त्रीमे दोष श्रीरामचंद्रजीने जो कथन करे है तिनको दो श्लोकों करके कहिते है । नाडि अस्थि आदिकोंकी ग्रंथिरूप जो कुच आदिक अंग हैं तिन करके शोभा है जिसकी तिस मांसकी पुत्तलीरूप स्त्रीके यंत्रकेसदृश चंचल शरीररूप पिंजरेमें क्या सुंदरता है अर्थात् कछूभी नही इति ॥ १८ ॥

त्वङ्मांसरक्तबाष्पांबु पृथक् कृत्वा विलोचने ॥
समालोकय रम्यं चेत्किम्मुधा परिमुह्यसि ॥ १९ ॥

किञ्च । बाष्पांबु- नेत्रजलं त्वगादीन् तस्या देहात् पृथक् कृत्वा विलोचने कृते समालोकय विचारय चेत् यदि रम्यं सुंदरम् तदासक्तिं कुरु इति शेषः । यदि नैव रम्यं तदा किम्मुधा हे मूढ कथं व्यर्थं मुह्यसि मोहितो भवसीति ॥ १९ ॥

त्वचा मांस रुधिर नेत्रोंका जल इन सर्वको स्त्रीके शरीरसें भिन्न भिन्न करके हे पुरुष देखके विचार कर यदि स्त्रीमे कछु सुंदरता है तो प्रीतिकरः यदि नही तो क्यों व्यर्थही तिसकों देखके मोहित होय है इति ॥ १९ ॥

श्रीभागवते ।

संगन्न कुर्यात्प्रमदासु जातु योगस्य पारम्परमारुरुक्षुः ॥

मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदंति यां निरयद्वारमस्य॥२०

अथ मातरं प्रति श्रीकपिलदेवेन ये दोषा उक्तास्तानाह संगमिति त्रिभिः। प्रमदासु युवतिषु जातु कदाचिदपि योगस्य पारं तत्त्वज्ञानं परमारुरुक्षुः अतिशयेनारूढेच्छुः यां स्त्रियमस्य मुमुक्षोर्निरयद्वारं नरकप्राप्तिकरमाहुः अतो मदीश्वरसेवया लब्ध आत्मरूपलाभो येनैतादृशो भवेदिति ॥ २० ॥

अब माताके प्रति श्रीकपिलदेवजीनें जो स्त्रीमें दोष कथन करे हैं तिनको तीन श्लोकों करके कहिते हैं । ज्ञानकी पूर्णताके प्राप्त होनेकी इच्छावाला पुरुष स्त्रीयोंमें संग कबी न करे क्योंकि इस स्त्रीकों मुमुक्षुपुरुषके नरकका द्वार शास्त्र कहिते हैं तातें मैं ईश्वरकी सेवा करकेही आत्माके लाभकों प्राप्त होय इति ॥ २० ॥

योपयाति शनैर्माया योषिद्देवविनिर्मिता ॥
तामीक्षेतात्मनो मृत्युं तृणैःकूपमिवावृतम् ॥ २१ ॥

योपयातीति । शनैः शुश्रूषादिमिषेणोपयाति या योषिद्रूपा माया तामात्मनो मृत्युं पश्येदिति ॥ २१ ॥

परमेश्वरकरके रची हुई स्त्रीरूपा माया जो सेवादिकोके निमित्तकरके शनैः शनैः करके पुरुषके समीप आवती है तिसको अपना काल देखे जैसे तृणों करके आच्छाद्या हुआ कूप समीप जानेंसें नाशका हेतु होय है तैंसे ही स्त्रीकी सेवा पुरुषके नाशका हेतु है इति ॥ २१ ॥

न तथास्य भवेन्मोहो बंधश्चान्यप्रसंगतः ॥
योषित्संगाद्यथा पुंसो यथा तत्संगिसंगतः॥२२॥

न तथाति । अन्यधनादेः तत्स्त्रियाः संगिनां कामिनां संगात् तदुक्तं कश्चिद्विदुषा । रे रे यंत्र मा रोदीर्भामिन्या

भ्राम्यते जगत् ॥ चक्षुर्विक्षेपमात्रेण करस्पर्शेण का गतिः ॥ इति ॥ २२ ॥

इस पुरुषकों ऐसा मोह तथा बंधन अन्य धनादिकोंके संगसें नहीं होय है जैसा स्त्रीके संगसें तथा तिसके संगी कामी पुरुषोंके संगसें होय है । तैसे ही किसी स्त्रीकों चरखा कातती देखके किसी पंडितनें कहा है । हे चरखे तूं मती रुदन करे इस स्त्रीनें तो नेत्रोंके कुटिल करनेसें ही जगत् भ्रमाईताहै; तेरेकों तो हस्तका स्पर्श कर रही है क्या जाने तेरी क्या गति होगी इति ॥ २२ ॥

कर्मणा दैवनेत्रेण जंतुर्देहोपपत्तये ॥
स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः ॥ २३ ॥

देहदोषास्तेनैव तत्र च उक्तास्तानाह कर्मणेति यावदध्यायसमाप्ति । बालतरुणवृद्धावस्थासु दुःखानि वक्तुं प्रथमं गर्भदुःखान्याह । दैवनेत्रेण ईश्वरप्रवर्त्तकेन देहोपपत्तये शरीरप्राप्तये पुंसः पितुः रेतःकणा वीर्यावयवा आश्रया यस्य स्त्रियाः मातुः अत्रपितुर्वीर्याश्रयणत्वाज्जीवस्य पूर्ववृत्तमात्मपुराणाज्ज्ञेयं तत्रायं स्वर्गान्नरकाद्वाच्युतस्यान्येषु प्रवेशास्ततः पितुर्भुक्तान्नैः सह तस्यदेहवीर्याश्रयणमिति ॥२३॥

अब देहमें दोष तिसी कपिलदेवजीनें जो भागवतमें कथन करे है तिनकों अध्यायकी समाप्तिपर्यंत कहिते हैं । बाल युवा वृद्ध इन तीन अवस्थोंमें दुःख कहिने वास्ते प्रथम गर्भके दुःखोंकों कहिते हैं । परमेश्वर है प्रेरक जिसका तिस अपने प्रारब्धकर्मकरके संयुक्त जीव देहकी प्राप्तिवास्ते पिताके वीर्यके साथ मिला हूआ माताके उदरमें प्रवेश करे है यहां पिताके वीर्यके साथ मिलनेंसे पूर्वका वृत्तांत जीवका आत्मपुराणसें जान लेना सो यह है स्वर्ग वा नरकसें गिडे हूए जीवका अन्नमें

मवेश होय है पश्चात् पिता करके भक्षण करे हूए अन्नके साथ पिताके शरीरमें वीर्यके साथ मिले है इति ॥ २३ ॥

कललं त्वेकरात्रेण पंचरात्रेण बुद्बुदम् ॥
दशाहेन तु कर्कन्धूःपेश्यंडं वा ततःपरम्॥२४॥

कललमिति।कललं शुक्रशोणितमिश्रितं दशाहेन दशदिवसैः कर्कंधूर्बदरीफलवत्कठिनपेश्यंडमंडाकारं मांसपिंडमिति २४

एक रात्रिमें पिताका वीर्य तथा माताका रुधिर मिलके कीचसदृश बने है पंच रात्रिमें बुद्बुदा बने है दश दिनोंमें बेरफलके प्रमाण बने है पश्चात् अंडके सदृश मांसका पिंड बने है इति ॥ २४ ॥

मासेन च शिरो द्वाभ्यां बाह्वंघ्याद्यंगविग्रहः ॥
नखलोमास्थिचर्माणि लिंगच्छिद्रोद्भव स्त्रिभिः॥२५॥

मासेनेति। बाहुः भुजः अंघ्रिः चरणमादिशब्देन हस्ताद्यंगानां विग्रहः विभागः लिंगं च छिद्राणि तेषां समुद्भव इति ॥ २५ ॥

एक मासमें शिर बने है दोमासमे भुजा तथा पाद आदिक अंगोंका विभाग होय है तीन मासमें नख रोम अस्थि त्वचा लिंगेंद्रिय नासिका आदिक छिद्र उत्पन्न होय हैं इति ॥ २५ ॥

चतुर्भिर्धातवः सप्त पंचभिः क्षुत्तृडुद्भवः ॥
षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे॥२६॥

चतुर्भिरिति । चतुर्भिर्मासैरुधिरादिसप्तधातवो भवंति पञ्चभिर्मासैः क्षुत्तृडुद्भवः क्षुधापिपासे जायेते जरायुणा गर्भवेष्टनेन वीतः प्रावृतः मातुर्दक्षिणे कुक्षौ भ्राम्यतीति ॥२६॥

चार मासमें त्वचा रुधिर मांस मेद मज्जा अस्थि वीर्य यह सप्त धातु

उत्पन्न होय हैऔर षट्मासमें जरायु नाम चर्मकरके अवरा हुआ माताके उदरमें दक्षिण अर्थात् दाहिने तरफ भ्रमण करे है इति ॥ २६ ॥

मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसंमते ॥
शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसम्भवे ॥ २७ ॥

मातुरिति।मात्रा जग्धेन भक्षितेनान्नेन पानाद्यैश्च एधमाना वर्धमाना धातवो यस्य स जंतूनां संभवो यस्मिंस्तस्मिन्नसंमतेऽयोग्यस्थाने विष्ठामूत्रयोर्गर्ते मातुरुदरे शेते इति ॥२७॥

माता करके भक्षणकरे हूए अन्नजलादिकों करके वृद्धिकों प्राप्तहूए हैं त्वचा आदिक सप्त धातु जिसके सो जीव माताके उदरमें शयन करेहै । कैसाहै उदर अयोग्य स्थान है तथा विष्ठामूत्रकागर्त्त अर्थात् खड्डारूपहै तथा अनेक कीटोंकी उत्पत्ति है जिसमें इति ॥ २७ ॥

कृमिभिः क्षतसर्वांगः सौकुमार्यात्प्रतिक्षणम् ॥
मूर्च्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः ॥ २८ ॥

कृमिभिरिति । तत्रत्यैरुदरभवैः कृमिभिः खादद्भिः सौकुमार्यात् कोमलत्वेन क्षतानि सर्वांगानि यस्य स उरुक्लेशः बहुदुःखी सन् प्रतिक्षणं मूर्च्छां प्राप्नोतीति ॥ २८ ॥

माताके उदरमें स्थित क्षुधा करके संयुक्त जो कीट हैं तिनों करके व्रणोंवाला हुवा है शरीर जिसका ऐसा सो जीव बहुत दुःखी हूआ कोमल अंगोंवाला होनेसें क्षणक्षणमें मूर्च्छाकों प्राप्त होय है इति ॥ २८ ॥

कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः ॥
मातृभुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थितवेदनः ॥ २९ ॥

किंच कटुः मरीचादिः अम्लादिभिः तिंतिड्यादिभिः उल्बणैर्दुःसहैरिति ॥ २९ ॥

कटु मरिचादिक तीष्ण अफीमादिक विष उष्णभोजन तथा लवण घृतसें विना रूक्ष अन्न. अम्लीआदिकखटाई इत्यादिक दुःसह पदार्थ जो मातानें भक्षण करे हैं तिन करके स्पर्शकों प्राप्त हुआ सर्व अंगोंमें दुःखकों प्राप्त होय है ॥ २९ ॥

उल्वेन संवृतस्तस्मिन्नंत्रैश्च बहिरावृतः ॥
आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठशिरोधरः ॥३०॥

उल्वेनेति । उल्वेन जरायुणा अंत्रैः पुरीतद्भिः स्वकुक्षौ शिरः कृत्वा तस्मिन्मातुरुदर आस्ते भुग्नं कुटिलीभूतं पृष्ठं च शिरोधरा ग्रीवा यस्य स इति ॥ ३० ॥

तिस् माताके उदरमें जरायुकरकेअवराहुआ तथा आंत्रोंकरके बाहिरसें अवराहुआ अपने उदरमें आपना शिर करके कुटिल पृष्ठ तथा ग्रीवा हुआ स्थित होय है इति ॥ ३० ॥

अकल्पः स्वांगचेष्टायां शकुंत इव पंजरे ॥
तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात् कर्म जन्मशतोद्भवम् ॥
स्मरन्दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विंदते ॥ ३१ ॥

अकल्प इति । अकल्पोऽसमर्थः शकुंतः पक्षी दैवात्पूर्वकर्मवशादीश्वरेच्छातो वा लब्धा स्मृतिर्येन स दीर्घं दुरंतमनुच्छ्वासं यथा भवति तथा तत्र स्थितः सन् नामेति विस्मये शर्म शान्तिं किं विन्दते प्राप्नोति किन्तु नैवेति ॥ ३१ ॥

किंच तिस माताके उदरमें अपनें अंगोंके चलानेमेंबी असमर्थ होय है पिंजरेमें पक्षीकी न्यांई तथा ईश्वरकी इच्छासें शत १०० जन्मकी स्मृतिकों प्राप्त होता है और पूर्वजन्मोंकों स्मरण कर्ता हुआ दीर्घ श्वास लेता हुआ शांतिकों क्या लभेहै अर्थात् किंचित्मात्रबी नहिं लभेहै इति ॥ ३१ ॥

आरभ्य सप्तमान्मासाँल्लब्धबोधोऽपि वेपितः ॥

नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्ठाभूरिव सोदरः ॥ ३२ ॥

आरभ्येति । लब्धबोधो दुःखाभिज्ञः सूतिवातैः प्रसूतिवायुभिः वेपितः कंपितः सोदरः कृमिसमानोदरजन्मा विष्ठाभूः कृमिरिव इति ॥ ३२ ॥

सप्त । माससें दुखोंके ज्ञानकों प्राप्त हूआ प्रसूतिकालके वायुकरके कंपायमान हूआ एक स्थानमें नहीं स्थित होय है विष्ठामें कीटकी न्यांई भ्रमण करे है । कैसा है सो बालक कीटोंका भ्रातारूप है तात्पर्य यह है कि एकही माताके उदरमें बालकका तथा कीटोंका जन्म है इति ॥३२॥

नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृतांजलिः ॥
स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः ॥ ३३ ॥

नाथमान इति । नाथमानः प्रार्थमान उपतप्यमानो वा ऋषिर्जीवः सप्तवध्रयो बंधनभूता धातवो यस्य स तमीश्वरं स्तुवीत विक्लवया व्याकुलया वाचा येन मातुरुदरे अर्पितः स्थापित इति ॥ ३३ ॥

सो जीव भयकों प्राप्त हूआ तथा परमेश्वरकों प्रार्थना कर्त्ता हूआ सप्तधातु करके बधा हूआ दोनों हस्त जोडके व्याकुलवाणी करके तिस परमेश्वरकी स्तुति करे है जिसनें कर्मोका फल देनेके वास्ते माताके उदरमें स्थापन करा है इति ॥ ३३ ॥

देह्यन्यदेहविवरे जठराग्निनासृक् ॥
विण्मूत्रकूपपतितो भृशतप्तदेहः ॥
इच्छन्नितो विवसितुं गणयन् स्वमासान् ॥
निर्वास्यते कृपणधीर्भगवान्कदा नु ॥ ३४ ॥

देहीति । अन्यदेहविवरे मातुरुदरकुहरे योऽसृक् विट् विष्ठा मूत्रं तेषां कूपस्तस्मिन्पतितस्तत्र जठराग्निना भृशं

अतिशयेन तप्तो देहो यस्य देहिनः अत एव कृपणधीः स इतो विवराद्विवसितुं निर्गन्तुमिच्छन्स्वमासान्गणयन् कदा नु अहो भगवान्बहिर्निर्वास्यते मामिति वदति अथवा कृपणेषु धीर्बुद्धिर्यस्येति भगवद्विशेषणं दयालुरित्यर्थः। अकृपणधीरुदारबुद्धिर्भगवानिति वा ॥ ३४ ॥

सो जीव रुधिर विष्ठा मूत्रके कूपरूप माताके उदरमें प्राप्त हुआ माताके देहरूप गुफामें तिसकी जठराग्निकरके अत्यंत तप्त हुआ है देह जिसका अपने मासोंको गणता हुआ तथा माताके उदरसें बाहिर निकसनेकी इच्छा कर्त्ता हुआ सो कृपणबुद्धि जीव इस प्रकारका वचन कथन करे है कि भगवान् कब मेरेकों बाहिर निकासेंगे इति ॥ ३४ ॥

तस्मादहं विगतविक्लव उद्धरिष्य
आत्मानमाशु तमसः सुहृदात्मनैव ॥
भूयो यथा व्यसनमेतदनेकरंध्रं
मामेभविष्यदुपसादितविष्णुपादः ॥ ३५ ॥

तस्मादिति। यस्मादत्र बहुदुःखं मया दृष्टं तस्माद्बहिर्गतः प्राप्तविष्णुपादः सन् आत्मानं सुहृदात्मना सारथिरूपबुद्ध्या उद्धरिष्ये उद्धरिष्यामि व्यसनं दुःखमनेकरंध्रं नानागर्भवासरूपं तदुक्तं भुक्ताश्च विविधाहाराः पीताश्च विविधाः स्तनाः। मातरो विविधा दृष्टाः पितरः सुहृदस्तथा। यदि योन्याः प्रमुच्येयं तत्प्रपद्ये महेश्वरमिति ॥ ३५ ॥

जिस हेतुसें ईहां मेने बहुतदुःख देखे हे तिसी हेतुसें बाहिर निकसा हुआ विष्णु भगवान्जीके चरणोंको प्राप्त होकर व्याकुलतासे रहित हुआ सारथिरूप बुद्धि करके तात्काल अपने आत्माकों अज्ञानसें पार करोंगा पुनः यह नानागर्भवासरूप दुःख जैसे मेरेकों नहीं प्राप्त होय इसी प्रकार और शास्त्रमेंबी कहा है। अनेक जन्मोंमें अनेक प्रकारके भोजन मैंने करे है तथा अनेक मातोंके अनेक प्रकारके दुग्धबी मैंनें पान करे है

तथा माता पिता मित्रबी मैनें बहुत देखे है अब यदि इस माताकी योनीसें छूटोंगा तो तिस परमेश्वरकीही शरणकों प्राप्त होंगा इति ॥ ३५ ॥

श्रीकपिल उवाच।

एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन्नृपिः ॥
सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यै सूतिमारुतः ॥ ३६ ॥

एवमिति। ऋषिर्जीवः भगवत स्तुवन् प्रसूत्यै उत्पत्त्यै सूतिमारुतः प्रसूतिकालीनो वायुः अवाचीनमवाङ्मुखं क्षिपतीति ॥ ३६ ॥

गर्भविषे इस प्रकारकी बुद्धिवाला जीव भगवत्की स्तुति कर्त्ता हुआ जब दशमासका होय है तब तिसकों प्रसूतिकालका वायु तात्काल बाहिर निकासनेके वास्ते नीचे मुखवाला करे है इति ॥ ३६ ॥

तेनावसृष्टः सहसा कृत्वावाक् शिर आतुरः ॥
विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो हतस्मृतिः ॥ ३७ ॥

तेनेति। तेन वायुना अवसृष्टोऽधः क्षिप्तः सन् निरुच्छ्वासो निरुद्धश्वासः अर्वाक् अधः शिरः कृत्वा कृच्छ्रेण कष्टेन विनिष्क्रामति बहिरायातीति ॥ ३७ ॥

तिस गर्भके वायु करके नीचे गेरा हूआ तथा दुःखी हूआ तात्काल नीचे मुख करके कष्टपूर्वक बाहिर निकसे है तथा जन्मकालमें उपरके श्वास जिसके रुके हैं तथा गर्भकी स्मृतिबी जिसकी नष्ट होई है इति ॥ ३७ ॥

पतितो भुव्यसृङ्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते ॥
रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥ ३८ ॥

गर्भदुःखान्युक्त्वा बाल्यावस्थायास्तान्याह पतित इति। भुवि पतितो रुधिरमूत्रे विष्ठाभूरिव कृमिरिव चेष्टते विप-

रीतां गतिं दुःखावस्थां गतः गर्भज्ञाने नष्टे रोरूयति अति-शयेन रुदतीति ॥ ३८ ॥

ईहांतक गर्भके दुःखोंकों कथन करके अब बाल्यावस्थाके दुःखोंकों कहिते हैं। इस प्रकार पृथिवीमें गिरा हूआ रुधिर मूत्र विषे कीटकी न्यांई चेष्टा करे है दुःखरूप अवस्थाकों प्राप्त हूआ गर्भमें जो जन्मां-तरोंका ज्ञान था तिसके नष्ट हूए अतिशय करके रुदन करे है इति ॥ ३८ ॥

परच्छंदं न विदुषा पुष्यमाणो जनेन सः ॥
अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्यातुमनीश्वरः ॥ ३९ ॥

परच्छन्दमिति। परस्य बालस्य च्छंदमभिप्रायमविदुषा पित्रादिना अनभिप्रेतं स्तन्यार्थं रोदनं उदरव्यथा प्रकल्प्य निम्बरसपानं चोदरव्यथया रोदने स्तनपानमित्यादिः प्र-त्याख्यातुं निवारणकर्तुमनीश्वरोऽसमर्थ इति ॥ ३९ ॥

बालकके अभिप्रायकों न जाननेवाले माता पिता आदिक बांधवों करके पालन करा हूआ सो बालक प्रतिकूल वस्तुकें नाहीं करनेकों असमर्थ हूआ अवाञ्छित वस्तुकों हीं प्राप्त होय है; तात्पर्य यह है कि बालक तो दुग्धके वास्ते रुदन करे है माता उदरपीडाकों कल्पना करके नींबके रसकों पान कराय है तथा उदरकी पीडा करके जब रुदन करे है तब माता भूख जानके दुग्धपान कराय है इति ॥ ३९ ॥

शायितोऽशुचिपर्यंके जंतुस्वेदजदूषिते ॥
नेशः कंडूयनेऽगानामासनोत्थानचेष्टने ॥ ४० ॥

शायित इति। अशुचिपर्यंके मलमूत्रयुक्ते स्वेदजदूषिते कृम्यादिभिर्युक्ते आसनं चोत्थानं चेष्टनं तत्रानीशोऽसमर्थः सन् रोरूयतीत्यनुषंगः ॥ ४० ॥

खटमलादिक स्वेदजजीवों करके संयुक्त तथा मूत्रादिकों करके

अशुद्ध खाटमें शयन कराया हुआ बालक अपने अंगोंके खुजानेमें तथा बैठनेमें उठनेमें चलनेमें असमर्थ हुआ अतिशय करके रुदन करे है, यह पद पूर्वके श्लोकसें जोड लेना इति ॥ ४० ॥

तुदंत्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः ॥
रुदंतं विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा ॥ ४१ ॥

तुदन्तीति । आमा कोमला त्वक् यस्य विगतं गर्भजातं ज्ञानं यस्य तं दंशा दंशनशीला मशकादयः तुदन्ति व्यथंतीति ॥ ४१ ॥

गर्भमें जो पूर्वजन्मोंका ज्ञान था सो विस्मरण हुआ है जिसको तथा कोमल है त्वचा जिसकी तिस रुदनकर्ते हुए बालककों काटनेके स्वभाववाले मच्छर खटमलादिक जीव दुःख करे है जैसे छोटे कीटकों बडे कीट काटे है ॥ ४१ ॥

इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगंडमेव च ॥
अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युः शुचार्पितः ४२

इत्येवमिति । शैशवं पंच वर्षाणि ततः पौगंडं यौवनादर्वाक् तत्राप्यध्ययनादिदुःखं ज्ञेयं यौवने तान्याह अलब्धोऽभीप्सितो वांछितो येन इद्धो दीप्तो मन्युः क्रोधो यस्य सः शुचार्पितः शोकेन संयुक्तो भवतीति ॥ ४२ ॥

इस प्रकार बाल्यावस्थाके दुःखोंको भोग कर पौगंडावस्थामें अध्ययनादि दुःखोंको भोगे है पांच वर्षपर्यंत बाल्यावस्था है तिससें पश्चात् यौवनावस्थातक पौगंडावस्था होय है । अब यौवनावस्थाके दुःखोंकों कहिते हैं, विपरीत बुद्धि रूप अज्ञानसें वांछित भोगोंको न प्राप्त हुआ महान् क्रोधकों प्राप्त होय है तथा शोकों करके युक्त होय है इति॥४२॥

सह देहेन मानेन वर्द्धमानेन मन्युना ॥

करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः ४३।

सह देहेनेति। देहेन सहैव वर्द्धमानेनाभिमानेन मन्युना क्रोधेन च आत्मनोऽन्ताय स्वनाशाय विग्रहं विरोधं करोतीति ॥ ४३ ॥

देहके साथही बढ़ा जो अभिमान तथा क्रोध तिनोंकरके कामी पुरुष कामी पुरुषोमें अपने नाशके वास्ते विरोध करे है इति ॥ ४३ ॥

भूतैः पंचभिरारब्धे देहे देह्यबुधोऽसकृत् ॥
अहंममेत्यसद्ग्राहः करोति कुमतिर्मतिम् ॥ ४४ ॥

भूतैरिति असद्ग्राहो हठो यस्य सः कुमतिः देही देहाभिमानी अतएवाऽबुधोऽज्ञः पंचभिर्भूतैरारब्धे विरचिते देहे अहंममेति मतिं करोतीति। तदुक्तं विष्णुपुराणे-मांसासृक्पूयविण्मूत्रस्नायुमज्जास्थिसंहतौ। देहे चेत्प्रीतिमान्मूढ भविता नरके पि सा ॥ इति ॥ ४४ ॥

मिथ्या हठवाला तथा मंद बुद्धिवाला जो देहाभिमानी अज्ञानी जीव है सो आकाश वायु अग्नि जल पृथिवी इन भूतो करके रचे हुए देहविषे अहंता ममता करे है अर्थात् देहके सुखदुःखादिक धर्म अपनेमें मानता हुआ मैं सुखी हूं मैं दुःखी हूं इस प्रकार देहमें अहंता करे है तथा मेरा देह सुखी है दुःखी है इस प्रकार ममता करे है। इसी प्रकार विष्णुपुराणमें बी कहा है। मांस रुधिर पूय विष्ठा मूत्र नाडी अस्थि मज्जाका समुदायरूप देहमें हे मूढ यदि तूं प्रीतिवाला है तो क्या है ऐसे देहमें प्रीति नरकमें बी होय है इति ॥ ४४ ॥

कुटुंबभरणाकल्पो मंदभाग्यो वृथोद्यमः ॥
श्रिया विहीनः कृपणो ध्यायञ्छ्वसिति मूढधीः॥४५॥

अथ वृद्धावस्थाया दुःखान्याह कुटुम्बभरणाकल्प इति। वृद्धत्वात्कुटुम्बपोषणेऽसमर्थोऽत एव व्यर्थोद्यमः धनेन रहित-

श्च कथं कुटुम्बपोषणं भवेदिति ध्यायन् श्वसितीति ॥ ४५ ॥

अब वृद्धावस्थाके दुःख कहिते हैं। जब कुटुंबके पालनमें असमर्थ होय है तथा मंद प्रारब्धवाला हूआ व्यर्थ उद्यमवाला होय है तब धनसें रहित हूआ कृपण मूढबुद्धि पुरुष कुटुंबपोषणकी चिंता कर्त्ता हूआ श्वास लेवे है ॥ ४५ ॥

एवं स्वभरणाकल्पं तत्कलत्रादयस्तथा ॥
नाद्रियंते यथापूर्वं कीनाशा इव गोजरम् ॥ ४६ ॥

एवमिति। तत्कलत्रादयस्तस्य भार्यापुत्रादयो यथा पूर्वं स्वपोषणकाले आदृतवंतस्तथेदानींत्रैवं तमाद्रियंते. आदरं न कुर्वंति यथा कीनाशाः कृषीवलाः गोजरं वृद्धबलीवर्दं नाद्रियंते ॥ ४६ ॥

इस प्रकार अपने पालनेमें असमर्थ वृद्ध पुरुषको तिसके स्त्रीपुत्रादिक जैसे पूर्व अपने पोषणकालमें आदर करतेथे तैसे अब वृद्धावस्थामें नहीं करे हैं जैसे खेती करनेवाले वृद्ध बैलकों खान पान ऐसानहीं देय है जैसा युवान हल जोतनेवालेकों देतेथे इति ॥ ४६ ॥

तत्राप्यजातनिर्वेदो म्रियमाणः स्वयंभृतैः ॥
जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे ॥ ४७ ॥

तत्रापीति । तत्रानादरे जातेपि अजातनिर्वेदोऽविरक्तः सन् स्वयंभृतैः पुत्रादिभिः म्रियमाणः पुष्यमाणो गृहे एवास्ते इत्युत्तरेण संबंधः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार स्त्रीपुत्रादिकों करके निरादरकों प्राप्त हूआ बी वैराग्यकों नहीं प्राप्त होय है तथा जिनकी पालना आप करता था तिन पुत्रादिकों करके निरादरपूर्वक पालना करा हूआ तथा जरावस्था करके कुरूप हूआ मरणके समीप हूआबी गृहमेंही स्थित होय है अर्थात् ऐसी दशामेंबी त्यागकी इच्छा नहीं करे है इति ॥ ४७ ॥

आस्तेऽवमत्योपन्यस्तं गृहपाल इवाहरन्॥
आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥ ४८ ॥

आस्ते इति । अवमत्या अवज्ञया उपन्यस्तं समीपे प्रक्षिप्तं गृहपालः श्वा इवाहरन् भुञ्जानः आमयावी रोगी अप्रदीप्ताग्निः मंदजठराग्निः ॥ ४८ ॥

रोगी तथा मंद जठराग्निवाला अल्प भोजन करनेवाला अल्प बैठने उठने वाला हुआ तथा पुत्रादिकों करके अपमानपूर्वक श्वानकि न्याई प्राप्त करे हुए अन्नको भोजन कर्ता हुआ गृहमेंही स्थित होय है इति ॥ ४८ ॥

वायुनाऽत्क्रमोत्तारः कफसंरुद्धनाडिकः ॥
कासश्वासकृतायासः कंठे घुरघुरायते ॥ ४९ ॥

वायुनेति। उत्क्रमोत्तारो बहिर्निर्गतनेत्रः कास इति रोग विशेष ऊर्द्धशीघ्रश्वासानां निःसरणं तेन श्वासे कृत आयासः परिश्रम इति ॥ ४९ ॥

वायुकरके बाहिर निकसे हैं नेत्र जिसके तथा कफकरके रुकी हैं नाडियां जिसकी तथा प्राणोंका जलदी उपरकों चलनारूप कासरोग करके श्वासोंमें परिश्रम है जिसके सो मरणकालमें कंठमें घुर घुर शब्द करे है इति ॥ ४९ ॥

शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबंधुभिः ॥
वाच्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशं गतः ॥ ५० ॥

शयान इति । वाच्यमानो हे तात हे बंधो इत्याहूयमानोऽपि न ब्रूते न वदतीति ॥ ५० ॥

शोक करते जो बांधव हैं तिनो करके परिवारा हुआ शयन करे है तथा कालकी फांसीके वश हुआ तिन बांधवों करके हे पिता हे भैया इस प्रकार बुलाया हुआ बी नहीं बोले है इति ॥ ५० ॥

एवं कुटुंबभरणे व्यापृतात्माऽजितेंद्रियः ॥
म्रियते रुदतां स्वानामुरुवेदनयास्तधीः ॥ ५१ ॥

एवमिति । यौवने कुटुंबभरणे व्यापृतात्मा संलग्नचित्तः उरुवेदनया बहुदुःखेनास्तधीः नष्टमतिरिति ॥ ५१ ॥

इस प्रकार युवाअवस्थामें कुटुंबके पालनेमेंही तत्पर हूआ है मन जिसका तथा नहीं जीते हे इंद्रिय जिसने मरणकालके अत्यंत दुःख करके नष्ट हुई है बुद्धि जिसकी सो बांधवोंके रुदन करते हुए मरणको प्राप्त होय है ॥ ५१ ॥

श्रीगुरुरुवाच ।

इत्यादयो ह्यनंता वै दोषा गृहधनादिषु ॥
मया संक्षेपतः प्रोक्ताः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि॥५२॥

इति श्रीवैराग्यभास्करे गृहादिषु दोषदृष्टिवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

इत्यादय इति । स्पष्टार्थः ॥ ५२ ॥
इति श्रीवैराग्यभास्करसंस्कृतव्याख्यायांतृतीयोऽध्यायः३॥

इत्यादिक और भी अनंत दोष गृहधनादिकोंमें हें हमनें तो संक्षेपसे कथन करे हैं किंतु विस्तार अन्यशास्त्रोंमें देखलेनाहे शिष्य! अब तू और क्या श्रवण करनेकी इच्छा कर्त्ता है अर्थात् जो तेरी इच्छा होय सो निःशंक हूआ पूछ इति ॥ ५२ ॥ इति श्रीवैराग्यभास्करे भाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

शिष्य उवाच ।

कारणं तु विरागस्य ज्ञातं मयात्मविराम ॥
फलावधिस्वरूपाणि ज्ञातुमिच्छामि सांप्रतम् ॥१॥

कारणमिति । विरागस्य फलादीन् सांप्रतमिदानीं ज्ञातुमिच्छामीति अन्यत्स्पष्टम् ॥ १ ॥

हे आत्माको अतिशय करके जाननेवाले भगवन्! विरागका कारण तो मैंने आपसे जाना है अब मैं विरागके फल अवधिस्वरूपको आपसें जाननेकी इच्छा कर्त्ताहूं इति ॥ १॥

श्रीगुरुरुवाच।

यतमानं वशीकारं व्यतिरेकं तथैव च ॥
एकेंद्रियं च संप्रोक्तं वैराग्यं तु चतुर्विधम् ॥ २ ॥

यतमानमिति।प्रथमं यतमानं द्वितीयं व्यतिरेकं तृतीयमेकेंद्रियं चतुर्थं वशीकारमेवं क्रमेण गणनीयमिति ॥ २ ॥

हे शिष्य! वैराग्य चार प्रकारका शास्त्रोंमें कथन करा है तिनमें एकका नाम यतमान है दूसरेका नाम व्यतिरेक है तीसरेका नाम एकेंद्रिय है चतुर्थका नाम वशीकार है इति । इनका लक्षण नीचेके श्लोकोंमें कथन करेंगे ॥ २ ॥

महता तु प्रयासेन चित्तदोषस्य सांप्रतम् ॥
करिष्यामीति संन्यासं यतमानं प्रकीर्त्तितम्॥३॥

किंलक्षणं यतमानादिवैराग्यचातुर्विध्यमित्याकांक्षायां तत्स्वयमेव व्याचष्टे महतेति चतुर्भिः । तत्रादौ यतमानस्य लक्षणमाह महता प्रयासेन बहुप्रयत्नेन चित्तदोषस्येति। जातावेकवचनं दोषानामित्यर्थः । संन्यासं त्यागं करिष्यामीति यन्निश्चयस्तद्यतमानं प्रकीर्तितं कथितम् ॥ ३ ॥

प्रथम यतमानका लक्षण कहिते हैं । अब तो चित्तके दोषोंको बडे प्रयत्न करके त्यागोंगा इस प्रकारका जो निश्चय है सो यतमान नाम करके शास्त्रोंमें कहा है इति ॥ ३ ॥

एते दोषा मया त्यक्ता एते संतीह चाधुना ॥

एवं तर्कोच्च संप्रोक्तं व्यतिरेकेतिसंज्ञिकम् ॥ ४ ॥

व्यतिरेकस्य लक्षणमाह एते दोषा इति । इह मम चित्ते एते दोषाः संति अन्यत्स्पष्टमिति ॥ ४ ॥

अब व्यतिरेकका लक्षण कहिते हैं । इतने दोष तो मैंने त्यागे हैं इतने दोष बाकी अब हे इस प्रकारके विचारसें व्यतिरेक नाम वाला वैराग्य कहा है इति ॥ ४ ॥

वहिर्भोगेषु संत्यागो वासना हृदि ये पुनः ॥
एकेंद्रियं च संज्ञेयं कथितं मुनिसत्तमैः ॥ ५ ॥

एकेंद्रियस्य लक्षणमाह बहिरिति । बहिः ऐहिकभोगेः सम्यक् त्यागः आमुष्मिकाणां भोगानां हृदये वासना इत्यैकेन्द्रियम् ॥ ५ ॥

अब एकेंद्रियका लक्षण कहिते है । बाहिरके भोगोंमें त्याग है और हृदयमें कछू वासना है अर्थात् इस लोकके भोगोंका तो त्याग और परलोकके भोगोंकी कछू बासना है सो एकेंद्रियनाम विराग जानना श्रेष्ठ मुनियोंने इसका यह ही लक्षण कथन करा है इति ॥ ५ ॥

ऐहिकामुष्मिकाणां च भोग्यानां दोषदृष्टितः ॥
काकविष्ठासमं ज्ञानं वशीकारं हि तद्विदुः ॥ ६ ॥

वशीकारस्य लक्षणमाह ऐहिकामुष्मिकाणामिति । ऐहिका भूमिगताः आमुष्मिका इंद्रलोकादारभ्य सत्यलोकांताः तदुक्तमपरोक्षानुभूत्यां भाष्यकारैः । ब्रह्मादिस्थावरांतेषु वैराग्यं विषयेष्वनु । यथैव काकविष्ठायां वैराग्यं तद्धि निर्मलमिति ॥ ६ ॥

दोषदृष्टि करके इस लोकके तथा ब्रह्मलोकादिक परलोकके भोगोंको जो काकविष्ठाके समान जानना है इसकों वशीकार नाम वैराग्य शास्त्रवेत्ता जाने हैं इस प्रकार श्रीशंकराचार्योंनेबी अपरोक्षानुभूतिमें कहा है ।

ब्रह्मासेलेके वृक्षादिक स्थावर जीवोंके जो विषय हैं तिनमें काकविष्ठाके समान जो वैराग्यहै सो वैराग्य निर्मलहै-अर्थात् परम वैराग्यहै इति॥६॥

केचिद्वदंति वैराग्यं त्रिधा भेदेन तच्छृणु ॥
तीव्रं तीव्रतरं चैव मंदारागस्तथैवच ॥ ७ ॥

अथ तस्यान्यप्रकारेण त्रिधाभेदानाह केचिदिति । मंदाः रागो मंदविराग इति ॥ ७ ॥

अब अन्य प्रकारसें वैराग्यके तीन भेद कहिते हैं । हे शिष्य! कोईक शास्त्रवेत्ता तौ तीन प्रकारका वैराग्य कहिते हैं एक तीव्रतर दूसरा तीव्र तीसरा मंदविराग इति ॥ ७ ॥

शेषभोगांश्च संव्याप्य सत्यलोकगतांस्तथा ॥
दुःखरूपेण संज्ञानमिति तीव्रतरं विदुः ॥ ८ ॥

किं लक्षणं तीव्रादित्रयाणामित्याकांक्षायां स्वयमेव तेषां लक्षणमाह शेषभोगानिति त्रिभिः । ऐहिकामुष्मिकभोगानां दुःखरूपेण सम्यग् ज्ञानं यत्तत्तीव्रतरमिति ॥८॥

प्रथम तीव्रतरका लक्षण कहिते है । शेषनागके भोगोंसे लेके ब्रह्मलोकके भोगोतक जो दुःखरूप करके जानना है सो तीव्रतर नाम विराग है इति ॥ ८ ॥

भुवि भोगाश्च मा भूवन्मम जायाधनादयः ॥
इति बुद्धिस्तु या प्रोक्ता सा विरक्तेश्च तीव्रता॥ ९ ॥

भुवीति। भार्याधनादयो भूमिभोगा मम मा भूवन् इति या बुद्धिर्निश्चयः सा विरक्तेर्वैराग्यस्य तीव्रता प्रोक्ता ऐहिकभोगत्यागः आमुष्मिकभोगानां किंचिदिच्छा तीव्रवैराग्यमित्यर्थः ॥ ९ ॥

अब तीव्रका लक्षण कहिते हैं । पृथिवीके भोग स्त्री धन पुत्र गृहादिक

मेरेको मर्ता मस होय इस प्रकारका जो निश्चय है सो वैराग्यकी तीव्रता है अर्थात् पृथिवीके भोगोका त्याग परलोकके भोगोंकी कछू इच्छा सो तीव्रवैराग्य है इति ॥ ९ ॥

दैवेच्छया च संप्राप्तान्नाशं पुत्रधनादिकान् ॥
दृष्ट्वा मोहाद्धि वैराग्यं मंदं तद्धि प्रकीर्तितम् ॥१०॥

दैवेच्छयेति । दैवेच्छया पूर्वकर्मानुसारेण नाशं प्राप्तान् पुत्रधनादीन् दृष्ट्वा मोहात्तेषां शोकेन यस्त्यागस्तन्मन्दवैराग्यं कथितमिति ॥ १० ॥

अब मंदवैराग्यका लक्षण कहिते हैं; अपने प्रारब्धकरके धनपुत्रादिकोंकों नाश हूआ देखके तिनोंके शोक करके जो वैराग्य है सो मंद वैराग्य शास्त्रकारोंनें कहा है ॥ १० ॥

फलमस्यापि विख्यातं पुनर्भोगेष्वदीनता ॥
अवधिं च प्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ ११ ॥

फलमाह फलमिति। अस्य वैराग्यस्य फलं विख्यातं शास्त्रेषु प्रसिद्धं किं प्रसिद्धं पुनर्भोगेष्वदीनता वैराग्याद्विषयांस्त्यक्त्वा पुनरिच्छाभाव इति ॥ ११॥

अब अर्द्ध श्लोक करके वैराग्यका फल कहिते है । प्रथम वैराग्यसें विषयोका त्याग करके पुन विषयोंके वास्ते दीन न होना सो यह वैराग्यका फल शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है।अब तेरेको वैराग्यकी अवधि कहिते है तू एकाग्र मन होकर श्रवण कर इति ॥ ११ ॥

इंद्रलोके महद्दुःखं सत्यलोके तथैव च ॥
विष्णुलोके तथा रौद्रे दुःखमेव विचारतः॥ १२ ॥

तस्यावधिमाह इंद्रलोक इति । सातिशयत्वनाशवत्त्वादेतेषु दुःखं प्रसिद्धं तथा च भगवतोक्तम्-आब्रह्मभुवनाल्लोकाः

पुनरावर्तिनोऽर्जुन इतिनतु वैकुंठे वैष्णवा एवं न मन्यंत इति न च वाच्यं तत्रापि जयविजयाभ्यां यद्दुःखं दृष्टं तत्प्रसिद्धम् ननु वशीकारस्य चास्यावधेः को भेदः तदाह वशीकारं तु ज्ञानानंदाभिलाषया तस्मात्पूर्वं भवति अवधिस्तु ज्ञानामृतप्राप्तौ अनायासेन भवति यथा कश्चिन्नरो धनिगृहे निमंत्रित उत्तमभोजनाभिलाषया क्षुधितोपि पूर्वं चणकान्नं नैवात्ति भोजनांते तृप्तः सन् प्रार्थितोप्यनायासेन तं त्यजति एवमत्रापि ज्ञेयम् ॥ १२ ॥

अब वैराग्यकी अवधि कहिते हैं। इंद्रलोकमे तौ महान् दुःख है तैसे ब्रह्मलोकमें बी दुःख ही हैं तथा विष्णुलोकमें शिवलोकमे बी निश्चय करके दुःख ही हैं विचार करके इस प्रकारका जो निश्चय है सो विरागकी अवधि है ऊपरके लोकोंमें इस प्रकार दुःख जानना अपनेंसें अल्प भोगवालेकों देखके अहंकार होय है तथा अपनेंसे अधिकभोगवालेको देखके ईर्षाहोय है तथा पुण्यके नाश हुए गिडनेका भय होय है तैसे गीतामे बी कहा है। हे अर्जुन ब्रह्मलोक पर्यंत संपूर्ण लोक जन्ममरणके देनेंवाले हैं। शंका। वैकुंठसें गिरवा वैष्णव नही मानेहैं। समाधान–यह तिनका हठहै क्योंकि वैकुंठसे बी जय विजय गिरे हैं सो यह वार्ता भागवतमें प्रसिद्ध है। प्रश्न। वशीकार वैराग्यका तथा अवधिका क्या भेद है क्योंकि ब्रह्मलोकादिकोंमें दुःख बुद्धि दोनोमे समानही निरूपण करीहै। उत्तर। भेद यह है वशीकार वैराग्य तौ ज्ञानानंदकी इच्छा करके प्रयत्न करके ज्ञानसें पूर्व प्राप्त होय है और वैराग्यकी अवधि ज्ञानानंदके प्राप्त हुए पश्चात् निर्यत्नही प्राप्त होय हे जैसे कोई पुरुष किसी धनीके गृहमें निमंत्रित हूआ उत्तमभोजनकी इच्छा करके भूखा हूआ बी हठ करके पूर्व चणा नहीं खावेहै और जब तिसके गृहमें भोजन करके तृप्तहोयहै तब दूसरे करके प्रार्थना करा हूआ बी चणा नहीं खावे है अर्थात् भोजन करे पश्चात् निर्यत्नही चणयोंका त्याग होय है इसी प्रकार दार्ष्टांतमें बी जानलेना इति ॥ १२ ॥

तीव्रतरवशीकारौ भाग्यलभ्यौ नरोत्तमैः ॥
तयोर्न्यासस्तु संप्रोक्तो नैवान्येषु कदाचन ॥ १३ ॥

यदर्थं वैराग्यभेदा उक्तास्तदाह तीव्रतरवशीकाराविति। नैवान्येषु यतमानव्यतिरेकैकेंद्रियतीव्रमंदेष्विति ॥ १३ ॥

अब जिसवास्ते वैराग्यके भेद कथन करेथे तिस प्रयोजनकों कहितेहैं तिन पूर्व कथन करे हुए सप्त प्रकारके वैराग्यके भेदोंमें तीव्रतर तथा वशीकारकों उत्तम पुरुष-भाग्योंकरके लभेहैं इन दोनोंमें हि संन्यासका करना शास्त्रोंमें कहाहे-दूसरे पांचोंमें नहीं कहा हे इति ॥ १३ ॥

संन्यासः कतिधा प्रोक्तो गुरो न्यासस्य किं फलम् ॥
ज्ञानद्वारा भवेन्मुक्तिर्ज्ञानादेवेति वैदिकी ॥ १४ ॥

अथ शिष्यः संन्यासाधिकारिणं कारणं च श्रुत्वा तं ग्रहीतुकामस्तस्य भेदं फलं च पृच्छति संन्यास इत्यर्द्धेन। प्रथमं द्वितीयप्रश्नस्योत्तरमुत्तरार्द्धेनाह अयंभावः प्रथमं संन्यासं कृत्वा तत्र श्रवणादीन्संपाद्य ततो- ज्ञानम्प्राप्य मुक्तो भवति ज्ञानान्मुक्तौ श्रुतिमाह ज्ञानादेव तु कैवल्यमिति ॥ १४ ॥

अब शिष्य संन्यासके अधिकारी तथा कारणकों श्रवण करके संन्यासके ग्रहण करनेकी इच्छावाला हुआ संन्यासके भेदोंकों यथा तिसके फलकों अर्द्ध श्लोक करके पूछेहे। हेगुरो! संन्यास केते प्रकारका हे तथा तिसका फल क्या हे? अब श्रीगुरुजी अर्द्धश्लोक करके दूसरे प्रश्नका उत्तर कहिते हैं, ज्ञानद्वारा मुक्तिकी प्राप्ति संन्यासका फल हे; तात्पर्य यह हे कि प्रथम संन्यास करके पश्चात् वेदांतका श्रवण मनन निदिध्यासन करके ज्ञानकों प्राप्त होकर मोक्षकों प्राप्त होय हे इस रीतिसें संन्यासका फल मोक्ष हे। ज्ञान करके मोक्षकी प्राप्तिमें श्रुतिप्रमाण कहिते हैं। ज्ञान करके ही निश्चय करके मोक्ष होय हे इति ॥ १४ ॥

श्रुतिः ।

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यंति मानवाः ॥
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥१८ ॥

अन्वयमुखेनोक्तं व्यतिरेकमुखेनाह–देवं प्रत्यगात्मरूप-ब्रह्म । अयंभावः यथा चर्मवदाकाशस्य वेष्टनं नैव भवति तथा ज्ञानं विना दुःखरूपसंसारस्यांतोपि न च भवतीति । ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः । नान्यः पंथा विद्यते अयनायेत्यादयः श्रुतयः ॥ १५ ॥

ज्ञानद्वारा मुक्ति कथन करके विना ज्ञानसें मुक्तिका अभाव कहिते हैं । जब पुरुष चर्मकी न्यांई आकाशकों लपेटेंगे तब आत्मारूप परमात्माके जाने विना संसारके दुःखोंका बी अंत होगा । तात्पर्य यह है कि-जैसे चर्मकी न्यांई आकाशका लपेटन नहीं होय है तैसे परमात्माके जाने विना संसारके दुःखोका बी अंत नहीं होय है अर्थात् मोक्ष नहीं होय है । तैसे और श्रुतिमें बी कहा है । ज्ञानसें विना मुक्ति नहीं है । मुक्तिके वास्ते ज्ञानसें विना और कोई मार्ग नहीं है । इत्यादिक श्रुति औरबी हैं इति ॥ १५ ॥

संन्यासो द्विविधः प्रोक्तो विविदिषाह्वयस्तथा ॥
विद्वन्न्यासश्च संप्रोक्तः किं भूयः श्रोतुमिच्छसि॥१६॥

प्रथमप्रश्नस्योत्तरमाह संन्यास इति । ज्ञानप्राप्त्यर्थं यत्क्रियते तद्विविदिषासंज्ञको भवति यत्तु ज्ञानं प्राप्य जीवन्मुक्तेर्विशेषसुखार्थं क्रियते तद्विद्वत्संन्यासो भवतीति ॥ १६ ॥

अब शिष्यके दो प्रश्नोंमें प्रथम प्रश्नका उत्तर कहिते हैं । हे शिष्य! संन्यास दो प्रकारका शास्त्रोंमें कथन करा है एक विविदिषा नाम करके दूसरा विद्वत् नाम करके कहा है । जो संन्यास ज्ञानकी प्राप्तिवास्ते करा जाय है सो विविदिषा नाम संन्यास है जो ज्ञानकों प्राप्त होकर जीवन्मु-

किके विशेषसुखवास्ते करा जाय है सो विद्वत्संन्यास है । हे शिष्य ! अब पुनः क्या श्रवण करनेकी इच्छा कर्ता है अर्थात् जो तेरी इच्छा होय सो पूछ इति ॥ १६ ॥

नाशात्काश्यां भवेन्मुक्तिस्ताभ्यां भवति किं गुरो॥
यदा तस्यां भवेन्मुक्तिर्ज्ञानस्य कृपया तदा ॥१७॥

यद्गुरुणोक्तं ज्ञानद्वारा भवेन्मुक्तिरिति तत्र शिष्यः पृच्छति नाशादित्यर्द्धेन। नाशात् मरणात् ताभ्यां संन्यासज्ञानाभ्यां तदुक्तं।काश्यां मरणान्मुक्तिरिति। अथार्द्धेनोत्तरमाह यदेति। तस्यां काश्यां ज्ञानस्य कृपया ज्ञानद्वारा इति ॥ १७ ॥

पूर्व जो श्रीगुरुजीनें ज्ञानद्वारा मुक्तिरूप संन्यासका फल कहाथा तिसमें शिष्य अर्द्ध श्लोक करके प्रश्नकरे है । हे गुरो ! काशीमें मरणेंसेंही मुक्ति होय है तो संन्यास करके वथा ज्ञान करके किस अर्थकी सिद्धि होय है तैसे अन्यत्र बी कहा है । काशीमें मरणसें मुक्ति होय है । अब अर्द्धश्लोक करके श्रीगुरुजी उत्तर कहिते हैं-हे शिष्य ! जब तिस काशीमें मुक्ति होय है तब ज्ञानकीही कृपा करके होय है अर्थात् काशीमें मुक्ति-भी ज्ञानद्वाराही होय है विना ज्ञानके उपदेशसें नहीं होय है इति ॥ १७ ॥

तदुक्तम् ।

वाराणस्यां पुरारिः परमकरुणया मुक्तिदो विष्णुभक्तं
गंगायामर्द्धदेहं हरिहरसुकविं प्राह कर्णे किलेदम् ॥
नेयं गंगा न काशी त्वमपि न च तथा नैव मुक्तिर्नचाहं
सत्यं चैतन्यमात्रं जगदिदमखिलं स्वप्नवच्चिद्विवर्त्तम्॥१८

इति श्रीवैराग्यभास्करे वैराग्यस्वरूपादिवर्णनं
नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

ज्ञानद्वारा काश्यां मुक्तौ प्रमाणमाह वाराणस्यामिति। वाराणस्यां काश्यां पुरारिः शिवः हरिहरसुकविं तयोः समदृष्टिं किमाह नेयं गंगा इत्यादिवाच्यदृष्ट्या वदति लक्ष्यदृष्ट्याह चैतन्यमात्रमिति। यथा स्वप्नं प्रतीतिमात्रं तथा चिदि प्रतीतिमात्रं तथा रज्जौ भुजंग इति ॥ १८ ॥

इति श्रीवैराग्यभास्करसंस्कृतव्याख्यायां
चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥ ४ ॥

अब ज्ञानद्वारा काशीमें मुक्तिविषे शास्त्रका प्रमाण कहिते हैं । काशीमें महादेवजी परम कृपा करके मुक्तिके देनेवाले हैं, गंगामें अर्द्धशरीर है जिसका तथा विष्णु भगवान्जीमें महादेवजीमें समदृष्टि है जिसकी तिस विष्णु भगवान्जीके भक्तको महादेवजी इस प्रकार कानमें कहिते हैं हेभक्त! यह गंगाबी नित्य नहीं है तथा काशीबी नित्य नहीं है तैंसे तूं बी शरीर करके नित्य नहीं है तथा मुक्तिबी कछु वस्तु नहीं है तात्पर्य यह है कि आत्माको यदि वास्तव बंधन होता तौ मुक्ति बी बनती परंतु आत्मातौ नित्यमुक्त है तातें मुक्ति बी कहिने मात्र है तथा मैं महादेव बी शरीर करके नित्य नहीं हों तैंसे अष्टावक्रनें बी कहा है । साकारमनृतं विद्धि ॥ अर्थ यह कि हे जनक! जो साकार है तिसकों तूं असत्यही जान। आकार करके सर्वकी मिथ्यात्वता कहिकर अब आत्मरूप करके सर्वकी सत्यता कहिते हैं यह संपूर्ण जगत् बाधसामानाधिकरण्य करके चैतन्यरूपही है। पुनःसाकारको मिथ्या कहिते हैं यह जगत् स्वप्नकी न्यांई मिथ्याही प्रतीत होय है जैंसे रज्जुका विवर्त्त सर्प रज्जुसें भिन्न नहीं है तैंसे यह जगत् बी चैतन्यका विवर्त्तरूप होनेंसें तिससें भिन्न नहीं है इति ॥ १८ ॥

इति श्रीवैराग्यभास्करभाषाटीकायां
चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पारिव्राज्यस्य धर्मांश्च श्रोतुमिच्छामि ते गुरो ॥
वद मे कृपया श्रेष्ठाञ्छृण्वग्रेऽथ वदाम्यहम् ॥ १ ॥

अथ संन्यासस्य द्वैविध्यं श्रुत्वा तस्य धर्मान्पृच्छति पारिव्राज्यस्येति त्रिभिः पादैः । पारिव्राज्यस्य यतेः ते त्वत्तः । पादेकेन प्रतिवचनाय गुरुः प्रतिजानीते शृण्विति ॥ १ ॥

अब शिष्य संन्यासके दो प्रकारके भेदकों श्रवण करके तिसके धर्मोंकों श्लोकके तीन पादों करके पूछे है; हे गुरो! मोक्षका साधन होनेसें गृहस्थाश्रमादिकोंके धर्मोंसें श्रेष्ठ जो संन्यासके धर्म हैं तिनकों मैं आपसें श्रवण करनेकी इच्छा कर्ताहूं आप कृपा करके मेरे ताहीं कथन करो? अब श्रीगुरुजी श्लोकके एकपाद करके उत्तर देनेकी प्रतिज्ञा करते हैं; हे शिष्य अब आगे संन्यासके धर्मोंकों हम कहिते हैं तू श्रवण कर इति ॥ १ ॥

स्मृतिः ।

पतत्यसौ ध्रुवं भिक्षुर्यस्य भिक्षोर्द्वयं भवेत् ॥
धीपूर्वरेतउत्सर्गो द्रव्यसंग्रह एव च ॥ २ ॥

अथ तस्य धर्मानाह यावद्ग्रंथसमाप्ति। तत्र प्रथमं नारीधनत्यागात्मकधर्ममाह पततीति। ध्रुवं निश्चयेन पतति स्वाश्रमाद्भ्रष्टो भवति । धीपूर्वरेतउत्सर्गः स्वेच्छया वीर्यत्याग इति ॥ २ ॥

अब संन्यासके धर्मोंकों कहिते हैं ग्रंथसमाप्तिपर्यंत; तिनमें बी प्रथम स्त्री तथा धनका त्यागरूप धर्म कहिते हैं अपनी इच्छासें वीर्यका त्याग करना तथा धनका संग्रह करना यह दो कर्म जिस संन्यासीके होते हैं सो संन्यासी निश्चय करके संन्यासाश्रमसें भ्रष्ट होय है इति ॥ २ ॥

व्यासस्मृतिः ।

यतीनां कांचनं दत्त्वा ताम्बूलं ब्रह्मचारिणाम् ॥
चौराणामभयं दत्त्वा दाताऽपि नरकं व्रजेत् ॥ ३ ॥

यतीनां द्रव्यग्रहणे दोषं कैमुतिकन्यायेनाह यतीनामिति । अत्र कांचनशब्देन ताम्रादिसर्वधातूनां ग्रहणं तेषां दानपात्रत्वाभावाच्चतुर्थीविभक्त्यभाव इति ॥ ३ ॥

संन्यासीकों धनग्रहण करनेका दोष कैमुतिकन्याय करके कहिते हैं संन्यासीयोंकों सुवर्णादिक धातु देके तथा ब्रह्मचारीयोंकों पान देके तथा चोरोंकों अभयदान देके देनेवाला नरककों जाय है इति ॥ ३ ॥

मेधातिथिः।

न संभाषेत्स्त्रियं कांचित्पूर्वदृष्टां न च स्मरेत् ॥
कथां च वर्जयेत्तासां न पश्येल्लिखितामपि ॥ ४ ॥

न संभाषेदिति । लिखितां भित्त्यादौ चित्रितां कांचिदिति मात्रादिसर्वस्त्रीणां ग्रहणं तदुक्तं श्रीभागवते । मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् । बलवानिंद्रियग्रामो विद्वांसमपकर्षतीति ॥ ४ ॥

संन्यासी किसीबी माताआदिक स्त्रीके साथ वार्ता नहीं करे तथा पूर्व देखी हुई स्त्रीकों यादबी नहीं करे तथा तिनकी वार्तांबी नहीं करे तथा स्त्रीकी मूर्त्ति बी नहीं देखे । तैसे भागवतमें बी कहाहै;माता भगिनी कन्याके साथबी एकांतमें नहीं बैठे क्योंकि इंद्रियोंका समूह बलवान्है विद्वान्के चित्तकों बी विषयोंके तरफ खेचलेय है इति ॥ ४ ॥

एतच्चतुष्टयं मोहात्स्त्रीणामाचरतो यतेः ॥
चित्तं विक्रियतेऽवश्यं तद्विकारात्प्रणश्यति ॥ ५ ॥

तासां संभाषणादिकरणे दोषमाह एतदिति । एतच्चतुष्टयं निरंतरोक्तसंभाषणादिकम् । विक्रियते विकारी भवति तस्य चित्तस्य विकारात् प्रणश्यति स्वार्थाद्भ्रष्टो भवतीति॥५॥

स्त्रीयोंके साथ संभाषणादिक करनेमें दोष कहिते हैं । पूर्वश्लोकमें

मैं श्रीकृष्णभगवान्जीका चिंतनकरे निर्विक्षेप एकांतस्थानमें स्थित होकर इति ॥ ७ ॥

वायुपुराणे।

यस्तु प्रव्रजितो भूत्वा पुनः सेवेत मैथुनम् ॥
षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ८ ॥

तासां संभाषणादिचतुष्टयान्मैथुनं त्वतीव दुरितकरमित्याह यस्त्विति षड्भिः। प्रव्रजितो यतिः ॥ ८ ॥

स्त्रीयोंके साथ संभाषणादिकचतुष्टयसें मैथुन अत्यंत पापके करनेवाला है। अब षट् श्लोकों करके यह कहिते हैं, जोपुरुष एकवार संन्यासकों ग्रहण करके पुनः स्त्रीकों भोगे है सो संन्यासी मरकरके साठहजार वर्ष विष्ठामें कीट होय है इति ॥ ८ ॥

शून्यागारेषु घोरेषु आखुर्भवति दारुणः ॥
स तिर्यक् स्यात्ततो गृध्रः श्वा वै द्वादशवत्सरम् ॥९॥

शून्यागारेष्विति। कृमिदेहानंतरं शून्यालयेषु आखुर्मूषको भवति स यतिस्ततस्तिर्यक् सर्पादिः स्यात् ततोगृध्रः ततः श्वा श्वान इति ॥ ९ ॥

कीटयोनिको त्यागके पश्चात् शून्य घोरगृहोंमें विकाल मूसा होय है पश्चात् सो संन्यासी तिरछे चलनेवाले सर्पादिककी योनिकों प्राप्तहोवे है पश्चात् चीलकी योनिकों प्राप्त होय है पश्चात् द्वादशवर्ष श्वान होय है इति ॥ ९ ॥

खरो विंशतिवर्षाणि दशवर्षाणि सूकरः ॥
अपुष्पोऽफलितो वृक्षो जायते कंटकान्वितः ॥१० ॥

खर इति। पुष्पफलैर्विहीनः कंटकैः संयुक्तो वृक्षो जायत इति ॥ १० ॥

तिससें पश्चात् बीसवर्ष गधा बनेहे पश्चात् दशवर्ष सूकरबने हे पुनः पुष्प तथा फलोंसें रहित तथा कंटकों करके संयुक्त वृक्ष बने हे इति ॥ १० ॥

ततो दावाग्निना दग्धः स्थाणुर्भवति कामुकः ॥
स्थावराच्च परिभ्रष्टो योनिष्वन्यासु गच्छति ॥ ११ ॥

तत इति । दावाग्निना वनाग्निना स्थाणुः छिन्नविटपः कामुकः कामी स्थावरात् वृक्षयोनितः इति ॥ ११ ॥

तिससें पश्चात् सोकामी संन्यासी वनकी अग्निकरके ऊपरसें दग्धहूआ ठूंठहोय हे पश्चात् वृक्षयोनिसें छूटाहूआ और अनेक नीचयोनियोंकों प्राप्तहोय हे इति ॥ ११ ॥

पूर्णे वर्षसहस्रांते जायते ब्रह्मराक्षसः ॥
क्षुत्पिपासापरिश्रांतः क्रव्यादो रुधिराशनः ॥ १२ ॥

पूर्ण इति । सहस्रवर्षाण्यन्यनीचयोनिषु वसित्वा ततो ब्रह्मराक्षसो भवति क्रव्यादः मांसभोजी इति ॥ १२ ॥

पूर्ण सहस्रवर्षके अंतमें अर्थात् सहस्रवर्ष नीचयोनियोंमें जन्म धारकर पश्चात् ब्रह्मराक्षस होय हे; जो राक्षस भूखप्यासकरके व्याकुल तथा मांसके भक्षण करनेवाला हे तथा रुधिरके पान करनेवाला हे इति ॥ १२ ॥

क्रमेण लभते मोक्षं कुलस्योत्सादनेन च ॥
चांडालगर्भसंभूतो जायते नात्र संशयः ॥ १३ ॥

क्रमेणेति । संन्याससंप्रदायोच्छेदनेन हेतुना राक्षसदेहाच्चांडालगर्भे संभूतः प्राप्तः सन् जायते । एवं क्रमेण मैथुनदोषान्मोक्षं लभते तत्पापान्निवृत्तो भवतीति ॥ १३ ॥

स्त्रीके संगसें संन्यास संप्रदायके नष्ट करनेवाला संन्यासी राक्षसदेहकों त्यागके चांडालके गर्भमें प्राप्त हूआ जन्मे हे इस प्रकारसें मैथुनके पापसें छूटे हे; भयानक जानके इसमें संशय नहीं करना व्यास भगवान्जीका वचन मिथ्या नहीं हे इति ॥ १३ ॥

अंगिराः ।

संन्यासं चैव यः कृत्वा पुनरुत्तिष्ठते द्विजः ॥
न तस्य निष्कृतिः कार्या स्वधर्मात्प्रच्युतस्य वै १४॥

ननु यतिर्मैथुनं कृत्वा पुनर्निष्कृतिकरणेन पापान्मुक्तो भविष्यतीति न च वाच्यं तस्य निष्कृतिरेव नास्तीत्याह संन्यासमिति । उत्तिष्ठते मैथुनादिना संन्यासधर्मात्प्रच्युतो भवति निष्कृतिः प्रायश्चित्तमिति ॥ १४ ॥

प्रश्न–संन्यासी मैथुन करके पश्चात् प्रायश्चित्त करके पापसें छूट जायगा तब तो नरक नहीं होगा । उत्तर। इसका प्रायश्चित्त ही कोई नहीं।अब यह कहिते हैं जो त्रैवर्णिक पुरुष संन्यास करके पुनः स्त्रीसंगमादिक करके संन्याससें निवृत्त होय है अपने संन्यासधर्मोंसें रहित तिस संन्यासीका प्रायश्चित्त कोई नहीं हे अर्थात् तिसके पापके निवृत्तिका उपाय कोई नहीं है तिसकों नरकही भोगना पडेगा इति ॥ १४ ॥

विष्णुस्मृतिः ।

चांडालाः प्रत्यवसिताः परिव्राजकतापसाः ॥
तेषां जातान्यपत्यानि चांडालैः सह वासयेत् ॥१५॥

ननु मैथुनकर्त्ता यतिरसेव्यो भवतु तस्माज्जातस्तु सेव्योऽस्तु तस्य को दोष इति न च वाच्यं सोपि दूरतस्त्याज्य इत्याह चाण्डाला इति । प्रत्यवसिता ब्रह्मचारिणः तापसा वानप्रस्था इति ॥ १५ ॥

प्रश्न–मैथुनकर्ता संन्यासी निंद्यहोवो परंतु तिसद्वारा जो उत्पन्न हूआ है सो तो निर्दोष है। उत्तर। तिसको बी दोषी होनेसें दूरसें त्यागने योग्यहै। अब यह कहिते हैं । चांडाल तथा ब्रह्मचारी तथा संन्यासी तथा वानप्रस्थ इन चारोंसें उत्पन्न हूए पुत्रादिकोंकों चांडालोंके साथ मिलायदेय अर्थात् तिनकों चांडाल जाने इति ॥ १५ ॥

दक्षः ।

पारिव्राज्यं गृहीत्वा तु यः स्वधर्मे न तिष्ठति ॥
श्वपादेनांकयित्वा तं राजा शीघ्रं प्रवासयेत् ॥ १६॥

ननु ये स्वधर्मे न तिष्ठंति तान्धर्मज्ञो राजा दंडं ददाति स्वधर्मात्प्रच्युतस्य यतेः को दंड इत्याकांक्षायां तं स्वदेशान्निःसारयेदित्याह पारिव्राज्यमिति । संन्यासाश्रमं गृहीत्वा यः स्वधर्मे न तिष्ठति स्त्रीसंगमादिना स्वधर्मात्प्रच्युतो भवति तं लोहमयश्वपादेनांकयित्वा चिह्नयित्वेति ॥ १६ ॥

प्रश्न–जो पुरुष अपने धर्ममें नहीं स्थित होय हैं तिनकों धर्मात्मा राजा दंड देवे है । तातें अपने धर्मसें रहित संन्यासीकों क्या दंड देने योग्य है? । उत्तर । जो पुरुष संन्यासकों ग्रहण करके पुनः स्त्रीआदिकोंका त्यागरूप अपने धर्ममें नहीं स्थित होय है तिस संन्यासीकों राजा श्वानके पादके सदृश गरम लोहेके पाद करके चिह्नितकरके तात्काल अपने देशसें निकास देय इति ॥ १६ ॥

अंगिराः ।

आरूढपतितो हंति दश पूर्वान्दशापरान् ॥
निस्तारयति तानेव यो हि सम्यग्व्यवस्थितः॥१७॥

ननु यो यतिः स्वधर्मे न तिष्ठति तस्य नरकं भवतु तस्य पित्रादयस्तु निर्दोषा इति चेत्तादृशपुत्रोत्पादनेन तेषामपि नरकं भवतीत्याह आरूढपतित इत्यर्द्धेन । संन्यासं कृत्वा पुनर्युवत्यादिसंगमकारी आरूढपतितः दश पितापितामहादिपूर्ववंशान् दशापरान् पुत्रपौत्रादिवंशान् हंति अधः पातयति । यः सम्यग्व्यवस्थितः स्वधर्मे स्थितः तान्विंशतिकुलानिति ॥ १७ ॥

प्रश्न–जो संन्यासी अपने धर्ममें स्थित नहीं होय है तिसकों नरक होवो

परंतु तिसके पिता पितामहादिक तौ निर्दोष हैं । उत्तर । ऐसे कामी पुत्रके उत्पन्न करणे करके तिन पितादिकोंकों बी नरक ही होय है । अब यह कहिते हैं । संन्यास करके पुनः विषय भोगनेवाला संन्यासी पूर्व पितापितामहादि दश कुलोंकों तथा पुत्र पौत्रादिक दश अगाडीकी कुलोंकों हनन करे है अर्थात् नरककों प्राप्त करे है; और जो संन्यासी अपने धर्ममें सम्यक् स्थितहै सो तिन पूर्व उत्तरकी बीसकुलोंकों तारेहै । इति ॥१७॥

विष्णुस्मृतिः ।

नैष्ठिकानां वनस्थानां यतीनामवकीर्णिनाम् ॥
शुद्धानामपि लोकेऽस्मिन्प्रत्यापत्तिर्न विद्यते ॥ १८ ॥

स्वधर्मवर्तियतिः केवलं तान्न तारयति किं तु स्वयमेवापि तरतीत्याह नैष्ठिकानामिति । नैष्ठिकब्रह्मचारिणामवकीर्णिनां रेतस्त्यागरहितानां प्रत्यापत्तिर्जन्म अवकीर्णिनां शुद्धानामेतत्पदद्वयं त्रयाणां विशेषणम् ॥ १८ ॥

अपने धर्ममें स्थित संन्यासी केवल तिनकोंही नहीं तारे है किंतु आपबी तरे है । अब यह कहिते हैं । शुद्ध कर्मोंवाले तथा वीर्यके त्यागसें रहित जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं तथा तिनोंही लक्षणोंवाले वानप्रस्थ तथा संन्यासी इन तीनोंका पुनः इस संसारमें जन्म नही होय है इति ॥ १८॥

जाबालः ।

चतुर्वेदी तु यो विप्रः सोमयाजी शतक्रतुः ॥
तस्मादपि यतिः श्रेष्ठस्तिलपर्वतमंतरम् ॥ १९ ॥

तादृशयतेः सर्वास्मादुत्तमत्वेऽन्यप्रमाणमाह चतुर्वेदीति। सोमनामयज्ञयजनशीलः अश्वमेधादिशतानि क्रतवो यस्य तस्मादिति ॥ १९ ॥

अब अपने धर्ममें स्थित संन्यासीकी सर्वाश्रमीयोंसें श्रेष्ठता कहिते

हैं । चार वेदोंको जाननेवाला तथा सोमनामयज्ञके करने वाला तथा अश्वमेधादिकसैकड़ों यज्ञोंके करने वाला जो ब्राह्मण है तिससेंबी संन्यासी श्रेष्ठ है तैंसे ब्राह्मणका तथा संन्यासीका तिलपर्वतका भेद है अर्थात् ब्राह्मण तो तिलके सदृश है और संन्यासी पर्वतसदृश है इति ॥ १९ ॥

पुराणांतरे ।

ब्रह्मचारिसहस्रं च वानप्रस्थशतत्रयम् ॥
ब्राह्मणानां तु कोटिश्च यतिरेको विशिष्यते ॥२०॥

ब्रह्मचारिसहस्रमिति । एकतः सर्वे ब्रह्मचार्यादय एकतः एकयतिरपि तेभ्यो विशिष्यते अधिको भवतीति ॥ २० ॥

ब्रह्मचारियोंकि एक सहस्र एकतरफ तथा वानप्रस्थोंका तीनशत एकतरफ तथा गृहस्थ ब्राह्मणोंका एककोटि एकतरफ और एक संन्यासी एक तरफ तिन सर्वसें श्रेष्ठ है इति ॥ २० ॥

जाबालः ।

एकदंडी त्रिदंडी वा शिखी मुंडित एव च ॥
काषायमात्रसारोपि यतिः पूज्यो युधिष्ठिर ॥ २१ ॥

इति श्रीवैराग्यभास्करे संन्यासधर्मेषु द्रव्यस्त्री-
ग्रहणे दोषवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

स्वधर्मस्थो यतिः केवलमोक्षं नैव प्राप्नोत्यपि त्वत्रापि संपूज्यो भवतीत्याह एकदंडीति । शिखी जटी काषायमात्र-सारः यतिवेषमात्रो नत्वधिकजपतपआदिः किंतु स्त्रीसं-गमादिकुकर्मरहितो यतिः पूज्य इति ॥ २१ ॥

इति श्रीवैराग्यभास्करसंस्कृतव्याख्यायां
पंचमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ५ ॥

अपने धर्ममें स्थित संन्यासी केवल मोक्षकोही नहीं प्राप्त होय है किंतु इस लोकमें बी पूजने योग्य है। अब यह कहिते हैं। हे युधिष्ठिर! संन्यासी एकदंडी होय वा त्रिदंडी होय वा जटावाला होय अथवा परमहंस होय और विद्याआदिकोंसें रहित हूआ बी अपने धर्ममें स्थित केवलगेरू-करके रंगे हूए वस्त्रोंवाला बी पूजने योग्य है इति ॥ २१ ॥

इति श्रीवैराग्यभास्करभाषाटीकायां
पंचमोऽध्यायः समाप्तः॥ ५ ॥

व्यासः।

**यत्यन्नं नैव भोक्तव्यं प्राणैः कंठगतैरपि ॥
गोमांसस्य समं ज्ञेयं सुराबिंदुसमं जलम् ॥ १ ॥**

अथ निषिद्धान्नत्यागात्मकधर्ममाह यत्यन्नमिति याव-दध्यायसमाप्ति। यत्यन्नं चतुर्वर्णाश्रमिभिर्न भोक्तव्यं यते-रन्नं तेषां गोमांससमं तस्य जलं सुराबिन्दुसममिति ॥ १ ॥

अब निषिद्ध अन्नका त्यागरूप संन्यासीका धर्म कहिते हैं अध्यायकी समाप्तिपर्यंत। प्राणोके कंठमें प्राप्त हूए बी अर्थात् क्षुधा करके व्याकुल बी हूए संन्यासीका अन्न चारों वर्णाश्रमीयोंने भक्षण करने योग्य नहीं है। संन्यासीके अन्नकों गौके मांस समान जानना तथा तिसके जलकों मदिराकी बूंदोके समान जानना इति ॥ १ ॥

यमस्मृतिः।

**यत्यन्नं यतिपात्रस्थं यतिना प्रेरितं च यत् ॥
अन्नत्रयं न भोक्तव्यं भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत् ॥ २ ॥**

यत्यन्नमिति।भिक्षया यद्यतिना संगृहीतं तद्यत्यन्नं केनापि गृहस्थेन यतिपात्रे स्थापितं यत्तद्यतिपात्रस्थं यतिना प्रे-रितं भो देवदत्त। एतस्मै अन्नं देहीत्येवमन्नत्रयम् ॥ २ ॥

भिक्षा करके संन्यासीनें संग्रह करा जो अन्न वा संन्यासीके पात्रमें गृहस्थका धरा हुआ अन्न वा संन्यासीकी प्रेरणासें गृहस्थ करके दीया हुआ अन्न सो यह तीन प्रकारका अन्न भक्षण करने योग्य नहीं है यदि इस तीन प्रकारमेंसें एककोंबी भक्षण करे तो एक मासका चांद्रायण-व्रत करे इति ॥ २ ॥

व्यासः।

यतिहस्तगतं द्रव्यं गृह्णीयाज्ज्ञानतो यदि ॥
सत्वधो नयते मूढः कुलानामेकविंशतिम् ॥ ३ ॥

यतिहस्तगतमिति । द्रव्यशब्देनान्नजलादिसर्ववस्तूनां ग्रहणम् ज्ञानतो यतिरयमेवं जानन्निति अधो नरकम्॥ ३ ॥

संन्यासीके हस्तमें प्राप्त हुए यत्किंचित् अन्नजलादिक वस्तुकों जो जानके ग्रहण करे है सो मूर्ख अपनी २१ इकीस कुलोंकों नरककों प्राप्त करे है इति ॥ ३ ॥

बृहस्पतिः।

यत्यन्नं ब्रह्मचार्यन्नमवीरान्नं तथैव च ॥
शूद्रान्नं च तथा भिक्षुर्वर्जयेत्परदारवत् ॥ ४ ॥

ननु इतराश्रमिणां यतेरन्नग्रहणे दोषोऽत्र ज्ञायते न तु यतेरिति न च वाच्यम् । यतिनापि यत्यन्नं त्याज्यमित्याह यत्यन्नमिति ॥ ४ ॥

प्रश्न—पूर्व तीन श्लोकोंसें संन्यासीका अन्न तिससें इतर गृहस्थादिकोंकोंही निषिद्ध जाना जाय है कछु संन्यासीके अन्नके ग्रहणमें संन्यासीकों दोष नहीं जाना जायहै तांते संन्यासीके धर्मोंमें तिन तीन श्लोकोंका लिखना असंबंध है । उत्तर । संन्यासीका अन्न जैसे गृहस्थादिकोंकों त्यागने योग्य है तैसे संन्यासीका अन्न संन्यासीनें बी त्यागने योग्यहै। अब यह कहिते हैं। संन्यासीका अन्न तथा ब्रह्मचारीका अन्न तथा अवीरोंका अन्न तथा शूद्रका

अन्न इन चार अन्नोंकों संन्यासी परस्त्रीके समान त्यागे।तात्पर्य यह है कि; तिनकों ग्रहण करणेंसे परस्त्रीगमनके दोषकों प्राप्त होगा इति ॥ ४ ॥

जाबालः ।

स्वधर्मात्प्रच्युता ये वै पुरुषा योषितोऽपि वा ॥
अवीरास्ते सदा ज्ञेया नित्यं सद्भिर्विगर्हिताः॥ ५ ॥

किं लक्षणमवीराणामित्याकांक्षायां स्वयमेव तेषां लक्षणमाह स्वधर्मादिति। योषितो युवतयः विगर्हिता निंदिता इति ॥ ५ ॥

पूर्वश्लोकमें जो अवीरशब्द था तिसका अब अर्थ कहिते हैं । अपने धर्मसें रहित जो पुरुष वा स्त्री हैं सदा महात्मों करके निंदने योग्य तिनकों सदा अवीरजाने इति ॥ ५ ॥

अत्रिः ।

द्वावेवाश्रमिणौ भोज्यौ वानप्रस्थो गृही तथा ॥
अभोज्यमन्नमन्येषां सर्वेषामपि लिंगिनाम् ॥ ६ ॥

किं बहूक्तेन गृहस्थवानप्रस्थौ विना सर्ववेषधारिणां त्याज्यमित्याह द्वावेवेति । ब्रह्मचारित्रिशिखिमुंडितैकदंडित्रिदंड्यादीनां सर्वेषां लिंगिनां चिह्नधारिणामभोज्यम् ॥ ६ ॥

क्या है बहुत कहिनेसें गृहस्थ तथा वानप्रस्थोंसें विना सर्ववेषधारीयोंका अन्न त्यागे। अब यह कहिते हैं । वानप्रस्थ तथा गृहस्थ इन दोनोंका अन्न भोजन करने योग्य है और ब्रह्मचारी एकदंडी त्रिदंडी जटी परमहंस इत्यादिक सर्ववेषधारीयोंका अन्न भोजन करने योग्य नहीं है और आनंद आश्रमादि दशनाम संन्यासी तथा उदासी निर्मले विरागी रामस्नेही गरीबदासी दादूपंथी इत्यादिक सर्व वेषधारीयोंको भी संन्यासके अंतर्गत होनेसें इनके अन्नका निषेध भी जान लेना इति ॥ ६ ॥

जाबालः ।

यत्किंचिद्दीयमानं तु गृहिणीकरसंस्थितम् ॥
भिक्षुर्भिक्षां न गृह्णीयात् काकयोनिषु जायते ॥७ ॥

यत्किञ्चिदिति । गृहिणी स्वभार्याग्रहणे दोषमाह चतुर्थपादेन । यदि गृह्णातीति शेषः । तदा काकयोनिषु जायत इति ॥ ७ ॥

अपनी स्त्रीके हस्तमें स्थित भिक्षाकों तथा इतर यत्किंचित् वस्तुकों संन्यासी नहीं ग्रहण करे यदि ग्रहण करेगा तौ काकोंकी योनिकों प्राप्त होगा इति ॥ ७ ॥

मनुः ।

न चोत्पातनिमित्ताभ्यां न नक्षत्रांगविद्यया ॥
नानुशासनवादाभ्यां भिक्षां लिप्सेत कर्हिचित् ॥८॥

अथ यद्गुणानाविष्कृत्वा भिक्षाग्रहणं तदपि निषिद्धमित्याह नचेति । उत्पाता भूकंपादयः निमित्ता व्यवहारकाः नक्षत्रांगविद्या ज्योतिःशास्त्रम् अनुशासनमुपदेशः वादो विवाद इति ॥ ८ ॥

अपने गुणोकों प्रकट करके बी भिक्षा नहीं ग्रहण करे। अब यह कहिते हैं । पृथिवीकंपन उल्कापातादिकोका फल दखायके तथा व्यवहारक किसी निमित्त करके ज्योतिःशास्त्र करके तथा उपदेशकरके विवाद करके संन्यासी भिक्षाकी इच्छा नहीं करे इति ॥ ८ ॥

अत्रिः ।

अपक्वं यदि वा पक्वं याचयेद्यः कचिद्यतिः ॥
स्वधर्मस्य तु लोपेन तिर्यग्योनिं व्रजेद्यतिः ॥ ९ ॥

स्वकरेण पाचितमपि निषिद्धमित्याह अपक्कमिति । पक्कस्यपाचनमुष्णंकरणमिति ॥ ९ ॥

अपने हस्तसें सिद्धकरा अन्न बी निषिद्ध है। अब यह कहिते हैं–कच्चे अन्नकों अपने हस्तसें यदि कदाचित् संन्यासी पकाय वा पक्केकों गरम करे सो संन्यासी अपने धर्मके लोप करने करके सर्पादिक तिर्यग् योनिकों प्राप्त होय है ॥ ९ ॥

यमः ।

कणपिण्याकतक्रं वा शाकमूलफलादिकम् ॥
पक्कं वाप्यथ वाऽपक्कं पचनाज्ञानतो यतिः॥ १० ॥
आचरेत्रीणि कृच्छ्राणि प्राकृतान्येव शुद्धये ॥
अभ्यासाद्बुद्धिपूर्वं हि पाकदोषान्न मुच्यते ॥ ११ ॥

पाचने दोषमश्रुत्वा यदि पाचयेत्तदा तस्य निष्कृतिर्भवति यदि तत्र तच्छ्रुत्वापि पुनःपुनः पाचयेत्तदा तस्य निष्कृतिर्नास्तीत्याह द्वाभ्याम्। कणाश्चूर्णतण्डुलाः पिण्याकं तैलयंत्रोद्धृतं तिलकिट्टं मूलं मूलकादीति ॥ १० ॥ ११ ॥

चावलोंकी कणीयां तिलोंकी खल मठा शाक, मूलीआदिक मूल तथा तोरईआदिक फल इत्यादिक भोज्य पदार्थकों संन्यासी दोषकों न जानता हुआ पकाय वा पके हुए कों गरम करे तौ दोषकी निवृत्तिके वास्ते प्राकृतकृच्छ्र नाम तीन व्रतकरे यदि पकानेके दोषकों जानके वारंवार पकाय तौ तिस दोषसें प्रायश्चित्त करकेबी नहीं छूटे है इति ॥१० ११॥

नारदः ।

हव्यं कव्यं च राजेंद्र नाश्नीयादात्मवान्यतिः ॥
हव्यकव्यपरो भिक्षुः पतत्येव न संशयः ॥ १२ ॥

हव्यमिति । हे युधिष्ठिर हव्यं कव्यं देवतापितृनुद्दिश्य यदन्नं तदिति ॥ १२ ॥

हे राजा युधिष्ठिर ! देवता पितरोंके निमित्तके अन्नकों बुद्धिमान् संन्यासी न भक्षणकरे इस दो प्रकारके अन्नकों भक्षण करनेवाला संन्यासी अवश्य पतित होय है इसमें कछू संशय नहीं है इति ॥ १२ ॥

श्राद्धभोजी यतिर्नित्यमाशु गच्छति शूद्रताम् ॥
तादृशं कश्मलं दृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत् ॥१३॥

तमेव पतनमाह श्राद्धभोजीति त्रिभिः।तादृशं श्राद्धान्नभोजिनं यतिं कश्मलं मोहसंयुक्तम् ॥ १३ ॥

तिस पतनताकों अब कहिते हैं तीन श्लोकों करके । श्राद्धके अन्नकों भोजनकरनेवाला संन्यासी तात्काल सदैव शूद्रभावकों प्राप्त होयहै मोहकरके संयुक्त श्राद्धके अन्नकों भोजनकरनेवाले संन्यासीकों देखके पुरुष वस्त्रोंसहित स्नान करे इति ॥ १३ ॥

जैमिनिः ।

श्राद्धान्नं यस्य कुक्षौ तु मुहूर्तमपि वर्तते ॥
भिक्षोश्चत्वारि नश्यंति आयुः प्रज्ञा यशो बलम् ॥१४॥

श्राद्धान्नमिति।यस्य यतेः कुक्षौ उदरे तस्य भिक्षोश्चत्वारि नश्यंति तान्याह आयुरिति प्रज्ञा बुद्धिरिति ॥ १४ ॥

जिस संन्यासीके उदरमें दोघडीबी श्राद्धका अन्न स्थित होय है तिस संन्यासीके आयु बुद्धि यश बल यह चार नष्ट होय हैं इति ॥ १४ ॥

बृहस्पतिः ।

श्रवणं मननं ध्यानं स्वाध्यायं ज्ञानमेव च ॥
सद्यो नश्वरतां याति सकृच्छ्राद्धान्नभोजनात् ॥ १५ ॥

श्रवणमिति । शास्त्रश्रवणं स्वाध्यायं वेदपाठः ज्ञानं बुद्धिः सकृत् एकवारमिति ॥ १५ ॥

एकवारबी श्राद्धके अन्नके भोजन करनेसें शास्त्रका श्रवण तिसके अर्थका मनन तथा ध्यान वेदपाठ तथा बुद्धि यह सर्व तात्काल नष्ट होजाय हैं इति ॥ १५ ॥

मनुः ।

दशसूनासमं चक्रं दशचक्रसमो ध्वजः ॥
दशध्वजसमो वेशो दशवेशसमो नृपः ॥ १६ ॥

राज्ञोऽन्नं त्वतीवोग्रं सर्वदा त्याज्यमित्याह दशसूनासममिति । अत्र सूनादिशब्दैस्तद्वानुपलक्ष्यते तद्यथा दशसूनावत्सु यावान्दोषस्तावानेकस्मिंश्चक्रवति तैलिके, यावान्दशसु तैलिकेषु दोषस्तावानेकध्वजवति शौंडिके, यावान्दशसु ध्वजवत्सु दोषस्तावानेकत्र वेशवत्यां वेश्यायाम्, यावान्दशसु वेशवतीषु दोषस्तावानेकत्र राजनि ॥ १६ ॥

दश कसाईयोंमे जेता दोष है तेता एक तेलीमें है तथा दश तेलीयोंमें जेता दोष है तेता एक कलालमे है जेता दश कलालोंमें दोष है तेता एक वेश्यामे है जेता दशवेश्योंमें दोष है तेता एक राजामें है। तात्पर्य यह है कि यद्यपि इन पांचोका अन्न निषिद्ध है तथापि राजाके अन्नकों अत्यंत निंद होनेसें सर्वदा त्यागनेयोग्य है इति ॥ १६ ॥

राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ॥
आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्तिनः ॥ १७ ॥

राजान्ने दोषं वक्तुं प्रसंगाच्छूद्रादीनामन्नेपि तमाह राजान्नमिति द्वाभ्याम् । तेजो देहकांतिं ब्रह्मवर्चसं विद्यातेजसं चर्मावकर्तिनः चर्मकारस्य आदत्ते गृह्णातीति ॥ १७ ॥

राजाके अन्नमें दोष कहिनेके प्रसंगमें शूद्रादिकोंके अन्नमेंबी दोष कहिते हैं । राजाका अन्न शरीरकी कांतिकों नष्ट करे है तथा शूद्रक

अन्न विद्यातेजकों नष्ट करे है सुनारका अन्न आयुकों नष्ट करे है चमारका अन्न यशको नष्ट करे है इति ॥ १७ ॥

पूयं चिकित्सकस्यान्नं पुंश्चल्यास्त्वन्नमिंद्रियम् ॥
विष्ठा वार्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयिणो मलम् ॥ १८ ॥

पूयमिति । चिकित्सकस्य वैद्यस्यान्नं पूयं पूयभक्षणसमदोषं पुंश्चल्याः कुलटाया अन्नमिंद्रियं शुक्रं वार्धुषिकस्य तक्षवृत्तिजीवनस्य विष्ठासमं मलं श्लेष्मादि ॥ १८ ॥

वैद्यका अन्न पूयकेसमान है दुराचारवाली वेश्या आदिक स्त्रीका अन्न वीर्यकेसदृश है काष्ठकों छीलनेवालेका अन्न विष्ठाकेसमान है जिसकों खातीवा कहिते हैं तथा शस्त्रोंकों बेचनेवालेका अन्न श्लेष्मादिक मलकेसमान है इति ॥ १८ ॥

विष्णुस्मृतिः ।

यदि भैक्षं समादाय पर्युपेद्योगवित्तमः ॥
स पर्युषितदोषेण भिक्षुर्भवति किल्बिषी ॥ १९ ॥

अयं भावो यती राजादीनामन्नं त्यक्त्वा द्विजातीनां गृहेषु भैक्षान्नभोजी स्यात्तदपि क्षुधानिवृत्तिमात्रान्नं गृह्णीयान्नत्वाधिकं यद्यधिकं गृहीत्वा पर्युषेत्तदा दुष्कृती भवतीत्याह यदीति द्वाभ्याम् ॥ १९ ॥

इस पूर्वोक्त कथनसें राजादिकोंके अन्नकों त्यागके द्विजातियोंके गृहोंसें भिक्षा ग्रहण करे सोबी क्षुधाकी निवृत्तिमात्र अधिक नहीं ग्रहण करे। अब इस आशयसें कहिते हैं । संन्यासधर्मोंके जाननेवाला जो संन्यासी भिक्षाकों ल्याकर वासी करे है अर्थात् आहारसें अधिक ल्याके रात्रिके वास्ते वा दूसरे दिनके वास्ते रखे है सो संन्यासी वासी अन्नके करनेसे पापी होय है इति ॥ १९ ॥

यमः ।

यदि पर्युषितं भैक्षमश्नीयाद्भिक्षुः कथंचन ॥
तदा चांद्रायणं कुर्याद्यतिः शुद्ध्यर्थमात्मनः॥२०॥

पर्युषितान्नभक्षणे निष्कृतिमाह यदीति। पर्युषितं पूर्वदिवसे धृतमन्नं कथंचन कदाचिदश्नीयात्तदेति ॥ २० ॥

यदि संन्यासी पूर्व दिनकी रखीहुई बासी भिक्षाकों भक्षण करे तौ अपनी शुद्धिके वास्ते चांद्रायणव्रत करे इति ॥ २० ॥

या तु पर्युषिता भिक्षा नैवेद्ये कल्पिता तु या ॥
तामभोज्यां विजानीयाद्दाता च नरकं व्रजेत्॥२१॥

पर्युषितान्नभोक्तुः प्रायश्चित्तमुक्त्वा दातुर्नरकमाह या त्विति । नैवेद्ये कल्पिता श्रीकृष्णभगवतोऽन्यदेवतानिमित्ता । तदुक्तं, विष्णोर्निवेद्य भोक्तव्यं नान्यदेवस्य कस्यचित् ॥ भुक्त्वाऽन्यदेवनैवेद्यं चांद्रायणव्रतं चरेत् ॥२१॥

बासी अन्नके खानेवाले संन्यासीकों प्रायश्चित्त कथन करके अब बासी अन्नके देनेवाले गृहस्थकों नरकप्राप्ति कहिते है,-जो बासी भिक्षा है तथा जो श्रीकृष्णचन्द्रजीसें विना इतर देवतोंके निमित्तकी भिक्षा है तिस दो प्रकारकी भिक्षाकों संन्यासी भोजनके अयोग्य जाने अर्थात् ग्रहण नहीं करे यदि गृहस्थ देवेगा तौ नरककों प्राप्त होगा तैसें अन्यत्रभी कहा है । विष्णु भगवान्जीकाही नैवेद्य भोजनकरनेयोग्य है इतर किसी देवताका नैवेद्य भोजनकेयोग्य नहीं है इतर देवताके नैवेद्यकों भोजन करके चांद्रायणव्रत करे इति ॥ २१ ॥

जमदग्निः ।

श्वकाकक्रोडवेश्याविखरोष्ट्रं स्पर्शयेद्यतिः ॥
सभिक्षस्तु जले मग्नः शुध्येज्जप्त्वाघमर्षणम् ॥२२॥

यदि सभिक्षो भिक्षुः श्वादीन् स्पर्शयेत्तदा स्नात्वाऽघमर्षणमीश्वरं प्रणवं वा जप्त्वा शुध्येत् । क्रोडो वराहः अग्निर्मेष इति ॥ २२ ॥

भिक्षाकेसहित संन्यासी श्वान सूकर वेश्या तथा भेड खर ऊंट इन सबोंसाथ स्पर्श करे तो भिक्षाकेसहित जलमें स्नान करके पापोंके नष्ट करनेवाले परमेश्वरके नामकों जप करके शुद्ध होय ॥ २२ ॥

विश्वामित्रः ।

एकस्यान्नं त्र्यहं भुक्त्वा निरंतरमनापदि ॥
प्राणायामशतं कुर्याच्छुद्ध्यर्थं यतिरात्मवान् ॥२३॥

निरंतरान्नं विप्रस्याप्यभोज्यं भोजने प्रायश्चित्तमाह एकस्येति । त्र्यहं त्रिदिवसम् ॥ २३ ॥

निरंतर ब्राह्मणका अन्नबी नहीं ग्रहण करे अब यह कहिते हैं । एक पुरुषका अन्न असंड तीन दिनबी जो संन्यासी भोजन करे सो संन्यासधर्मोंके जाननेवाला संन्यासी शुद्धिके वास्ते शतप्राणायाम करे ॥ २३ ॥

आताचार्यवाक्यम् ।

एकान्नाशी भवेद्यस्तु कदाचिल्लंपटो यतिः ॥
तस्य वै निष्कृतिर्नास्ति प्रायश्चित्तायुतैरपि ॥२४॥

यदि सर्वदैकान्नभोजीस्यात्तदा तस्य निष्कृतिरपि नास्तीत्याह एकान्नाश इति । एकगृहे भोक्ता लंपटः स्वाद्वन्नासक्तः निष्कृतिः पापनिवृत्तिः अयुतं दशसहस्रमिति ॥ २४ ॥

जो संन्यासी स्वादमें लंपटहुआ एक पुरुषके अन्नकों यदि निरंतर भोजन करे है तिसके पापकी निवृत्ति सहस्रों प्रायश्चित्तोंकरकेबी नहीं है इति २४॥

बृहस्पतिः ।

नैवाददीत पाथेयं यतिः किंचिदनापदि ॥

कथमापत्सु गृह्णीयाद्यावदह्नाय भुज्यते ॥ २५ ॥

अनापदि पाथेयमन्नमप्यभोज्यमित्याह नैवाददीतेति। पाथेयं पथिभोज्यमन्नं अह्नाय आपद्येकदिवसभोज्यमात्रं पाथेयं गृह्णीयान्नचाधिकमित्यर्थः ॥ २५ ॥

आपदासें विना लोभ करके किंचित्मात्र अन्नकोंबी मार्गके वास्ते संन्यासी नहीं उठाय कदाचित् आपदामें मार्गके वास्ते उठाय तौबी एकदिनके वास्ते उठाय अधिक नहीं इति ॥ २५ ॥

अत्रिः।

ज्ञातीनां च कुले भिक्षुर्न भिक्षेत कथंचन ॥
आचरेच्च यदा भिक्षां तदा चांद्रायणं चरेत् ॥ २६ ॥

ज्ञातीनां भिक्षामेकदिवसेपि नाददीत ग्रहणे प्रायश्चित्तमाह ज्ञातीनामिति ॥ २६ ॥

ज्ञाति भाईयोंकी कुलमें संन्यासी एकदिनमेंबी कदाचित् भोजन नहीं करे यदि तिनकी भिक्षाकों ग्रहणकरे तौ चांद्रायणव्रत करे इति ॥ २६ ॥

सगोत्रमसगोत्रं वा यद्गृहे सूतकं भवेत् ॥
भिक्षां चेद्भिक्षुर्भिक्षेत भुक्त्वा चांद्रायणं चरेत्॥२७॥

इतिश्रीवैराग्यभास्करे संन्यासधर्मेषु निषिद्धान्नत्यागवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सूतकिनामन्नमप्यभोज्यमित्याह सगोत्रमिति ॥ २७ ॥

इति श्रीवैराग्यभास्करसंस्कृतव्याख्यायां षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥ ६ ॥

तैसे सूतकवालेका अन्नबी भोजनके अयोग्य है अब यह कहिते है । अपने गृहस्थाश्रमके गोत्रका होय वा दूसरे गोत्रका होय जिस किसीके गृहमें सूतक होय तिस गृहमें यदि संन्यासी भिक्षा मांगे तिस भिक्षाकों भोजन करके चांद्रायणव्रत करे इति ॥ २७ ॥

इति श्रीवैराग्यभास्करभाषाटीकायां
षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥ ६ ॥

मेधातिथिः ।

ब्राह्मणक्षत्रियविशां मेध्यानां भैक्षमाचरेत् ॥
तत्राप्यसंभवे पूर्वादाददीतोत्तरोत्तरात् ॥ १ ॥

अथ यतेर्ग्रहणयोग्यान्नमाह ब्राह्मणक्षत्रियविशामिति यावदध्यायसमाप्ति। विशां वैश्यानां मेध्यानां स्वधर्मवर्तिनां तत्र त्रिष्वपि ब्राह्मणासंभवे क्षत्रियाद्ग्राह्यं क्षत्रियासंभवे वैश्याद्ग्राह्यमिति ॥ १ ॥

अब संन्यासीके ग्रहणकरनेयोग्य अन्नको कहिते है अध्यायकी समाप्तिपर्यंत । मांस मदिरादिक भक्षणसें रहित पवित्र ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंकी भिक्षा करे इन तीनोंमेंबी यदि ब्राह्मणकी नही मिले तौ क्षत्रियसें ग्रहण करे तथा यदि क्षत्रियकी नहीं मिले तौ वैश्यकी ग्रहण करे इति ॥ १ ॥

द्विजाभावे तु संप्राप्ते उपवासत्रये गते ॥
भैक्षं शूद्रादपि ग्राह्यं रक्षेत्प्राणान्द्विजोत्तमः ॥ २ ॥

आपदि शूद्रस्याप्यन्नं ग्राह्यमित्याह द्विजाभाव इति । द्विजाभावे त्रैवर्णिकाभावे द्विजोत्तमो यतिरिति ॥ २ ॥

आपदामें शूद्रका अन्नबी ग्रहणयोग्य है अब यह कहिते है । द्विजसंज्ञावाले ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यके गृहसें तीन दिनतक भिक्षाके नहीं प्राप्त-

हुयेसंन्यासीकों शूद्रसेंबी भिक्षा ग्रहणयोग्य है शूद्रकी भिक्षाकरके बी प्राणों-कीं रक्षा करे इति ॥ २ ॥

उशनाः ।

माधुकरमसंक्लृप्तं प्राक्प्रणीतमयाचितम् ॥
तात्कालिकं चोपपन्नं भैक्षं पंचविधं स्मृतम्॥ ३ ॥

द्विजातीनामप्यन्नं निरंतरं नैव ग्राह्यमपितु भैक्षं ग्राह्यमि-त्युक्तमधुना भिक्षाभेदानाह माधुकरमिति। स्मृतं कथितम्३

द्विजातियोंकाबी निरंतर अन्न नहीं ग्रहण करे किंतु भिक्षान्न ग्रहण करे यह पूर्व कहाथा इस वास्ते अब भिक्षाके भेदोंकों कहिते हैं। एक माधुकरी दूसरी प्राक्प्रणीत तीसरी अयाचित चतुर्थी तात्कालिक पंचमी उपपन्न इस प्रकार भिक्षा पांचप्रकारकी शास्त्रोंमें कथन करी है इन पांचोंका लक्षण नीचेके पांच श्लोकों करकें वर्णन करेंगे इति ॥ ३ ॥

मनःसंकल्परहितान् गृहांस्त्रीन्पंच सप्त वा ॥
मधुवद्धरणं यत्तन्माधुकरमिति स्मृतम् ॥ ४ ॥

माधुकरादिपंचकं किंलक्षणमित्याकांक्षायां स्वयमेव तल्लक्षणमाह मनःसंकल्परहितानिति पंचभिः। अमुकगृहे-षु गमिष्यामीति संकल्परहितान् गृहान् संप्राप्य मधु-करी भ्रमरी यथा बहुपुष्पेभ्यो रसमाहराति एवं तेभ्यो यद-न्नाहरणं तन्माधुकरमिति ॥ ४ ॥

जैसे भ्रमरा अनेक पुष्पोंसें रसकों ग्रहण करे है तैंसे संकेतसे विना तीन वा पांच सप्त वा गृहोंसें जो अन्नका ग्रहण करना है सो माधुकरी नाम भिक्षा कथन करी है ॥ ४ ॥

शयनोत्थापनात्प्राग्यत्प्रार्थितं भक्तिसंयुतैः॥
तत्प्राक्प्रणीतमित्याह भगवानुशनामुनिः॥ ५ ॥

शयनोत्थापनादिति । मीतिसंयुतैस्त्रैवर्णिकैः उशनोमुनिः शुक्राचार्य इति ॥ ५ ॥

मातःकाल आसनसें उठनेसें पूर्व जो भक्तपुरुषोंनि मार्थना करी है अर्थात् निमंत्रण दीया है तिस भिक्षाकों माकूमणीत शुक्राचार्य कहिते हैं इति ॥ ५ ॥

भिक्षाटनसमुद्योगात्प्राक्केनापि निमंत्रितम् ॥
अयाचितं तु तद्भैक्षं भोक्तव्यं मनुरब्रवीत् ॥ ६ ॥

भिक्षाटनसमुद्योगादिति । माधुकराहरणोद्योगात् पूर्वं केनापि भक्तेनेति ॥ ६ ॥

माधुकरी मांगनेके उद्यमसें पूर्व किसी भक्तनें जो निमंत्रण दीया है इसका नाम अयाचितभिक्षा मनुजी कहिते हैं यह भिक्षाबी भोजनके योग्य है इति ॥ ६ ॥

उपस्थानेन यत्प्रोक्तं भिक्षार्थं ब्राह्मणेन हि ॥
तात्कालिकमिति ख्यातं तदत्तव्यं मुमुक्षुणा ॥ ७ ॥

उपस्थानेनेति । विप्रस्थानस्य गृहस्योपसमीपेन हेतुना विप्रगृहसमीपे गते सति यत्तेन भिक्षार्थमुक्तं निमंत्रितं तत्तात्कालिकम् ॥ ७ ॥

भिक्षा मांगते हुए ब्राह्मणके गृहके समीप पहुँचेसें जो ब्राह्मणनें भोजनके वास्ते कहा है सो तात्कालिक नामकरके भिक्षा शास्त्रोंमें मसिद्ध है यहबी मुमुक्षुनें भोजनकरनेंयोग्य है इति ॥ ७ ॥

सिद्धमन्नं भक्तजनैरानीतं यन्मठं प्रति ॥
उपपन्नं तदित्याहुर्मुनयो मोक्षकांक्षिणः ॥ ८ ॥

सिद्धमन्नेति । सिद्धं निष्पन्नं मठं स्वनिवासस्थानं प्रति ८॥

भक्तजनोंने जो पका हुआ अन्न कुटीमें प्राप्त करा है तिसको मोक्षकी इच्छावाले मुनि उपपन्न कहितें हैं इति ॥ ८ ॥

भिक्षाः पंचविधा ह्येताः सोमपानसमाः स्मृताः ॥
तासामेकतमयापि वर्तयन्सिद्धिमाप्नुयात् ॥ ९ ॥

अथास्या माहात्म्यमाह भिक्षा इति द्वादशभिः । एता निरंतरोक्ता तासां पंचानां मध्ये । सिद्धिं मोक्षाधिकारितामिति ॥ ९ ॥

अब भिक्षाका माहात्म्य कहिते हैं द्वादश श्लोकों करके । पूर्वोक्त यह पांच प्रकारकी भिक्षा अमृतके समान शास्त्रोंमें कथन करी है तिस पांच प्रकारकी भिक्षामेंसे किसी एक प्रकारकी भिक्षा करके वर्त्तता हुआ अर्थात् देहका निर्वाह कर्ता हुआ मोक्षकी अधिकारतारूप सिद्धिकों प्राप्त होय है इति ॥ ९ ॥

यमः ।

गंगातोयाभिषिक्तां च भिक्षां योऽश्नाति योगवित् ॥
न तु क्रतुशतैरिष्टं फलं प्राप्नोति मानवः ॥ १० ॥

गंगातोयाभिषिक्तामिति । यत्फलं भिक्षाभोजी यतिः प्राप्नोति तत्फलं मानवो गृही क्रतुशतैर्यज्ञशतैरपि नैव प्राप्नोतीति ॥ १० ॥

गंगाजलकरके सिंचन करी हुई भिक्षाको भोजन करनेवाला संन्यासी जिस वांछित फलकों प्राप्त होय है तिस फलको गृहस्थ सैंकडे यज्ञोंकरकेभी नहीं प्राप्त होय है इति ॥ १० ॥

गंगातोयं च भैक्ष्यं च वैष्णवान्नं विशेषतः ॥
आनखाग्रान्मोचयेत्पापं मंत्रपूतं हविर्यथा ॥ ११ ॥

गंगातोयमिति । अत्र गंगातोयं वैष्णवान्नं

ज्ञेयम्।वैष्णवान्नं विष्णवे यद् गृहस्थैरर्पितं न तु वेषधारिणा तेषामन्नस्य पूर्वनिषिद्धोक्तेरिति ॥ ११ ॥

गंगाजल तथा वैष्णवान मंत्रकरके पवित्र करा अन्न जैसे पापको नष्ट करें हैं तैसे भिक्षाका अन्नबी विशेष करके नखशिखापर्यंत पापोंकों नष्ट करे है अर्थात् शारीरक पापोंको नष्ट करे है विष्णु भगवान्जीकों जो गृहस्थोंनें अर्पण करा है अर्थात् विष्णुके नैवेद्यअन्नका नाम वैष्णवान्नहै वेषधारी वैष्णवोंकों संन्यासके अंतरगत होनेसें तिनके अन्नका निषेध षष्ठे अध्यायमें कहा है इति ॥ ११ ॥

शातातपः ।

भिक्षा माधुकरी नाम सर्वपापप्रणाशिनी ॥
अवधूतश्च पूतश्च सोमपानं दिने दिने॥१२॥

भिक्षेति । माधुकरीभोज्यवधूतः परमहंसः पूतः शुद्धो भवतीति ॥ १२ ॥

पांच मकार-की भिक्षामेंसेबी माधुकरी भिक्षा सर्व पापोंकों नष्ट करनेवाली हे परमहंस जिसके सेवनेसें पवित्रहोयहे दिनदिनमें अमृतपानके समानहे इति ॥ १२ ॥

गंगायाः सलिलं पुण्यं शालग्रामशिला तथा ॥
भिक्षान्नं पंचगव्यञ्च पवित्राणि युगे युगे ॥ १३ ॥

गंगाया इति । पंचगव्यं दुग्धदधिघृतगोमूत्रगोमयमिति॥ गंगाजल शालिग्राम भिक्षाका अन्न तथा दुग्ध दधि घृत गोमूत्र गोबर इनपांचोंका नाम पंचगव्यहे यह सर्व युगयुगमें पवित्रकरनेवाले हैं इति ॥१३ ॥

कण्वः ।

अब्बिंदुं यः कुशाग्रेण मासि मासि समश्नुते ॥
निरपेक्षस्तु भिक्षाशी स तु तस्माद्विशिष्यते ॥ १४ ॥

अब्बिंदुमिति । अब्बिंदुं जलबिंदुं मासेमासे स भिक्षाशी भिक्षाभोजी तस्मादब्बिंदुभोजिनो विशिष्यते श्रेष्ठो भवतीति ॥ १४ ॥

जलकी एकबूंदको कुशाके अग्रभागके साथ जो पुरुष एकएक मासमें पानकरे है अथकिसीकी इच्छा नहीं कर्ताहूआ भिक्षाभोजन करनेवाला संन्यासी तिससें श्रेष्ठहै अर्थात् ऐसे कष्टरूप तपसेंबी भिक्षाभोजन अधिक फलवाला है इति ॥ १४

याज्ञवल्क्यः ।

नक्तात्परश्चोपवास उपवासादयाचितम् ॥
अयाचितात्परं भैक्षं तस्माद्भैक्षेण वर्त्तयेत् ॥ १५ ॥

नक्तादिति । एककालरात्रिभोजनात् उपवासो निर्जलव्रतं परं श्रेष्ठमिति ॥ १५ ॥

अष्टमहरमें रात्रिभोजननसें निर्जलव्रत श्रेष्ठ है तिससें विना याचनासें प्राप्तहूआ अन्न श्रेष्ठहै तिससें माधुकरी भिक्षा श्रेष्ठ है तातें साधु माधुकरी वृत्तिसें शरीरका निर्वाह करे इति ॥ १५ ॥

वैराग्यशतके ॥

भिक्षाहारमदैन्यमप्रतिहतं भीतिच्छिदं सर्वदा
दुर्मात्सर्यमदाभिमानमथनं दुःखौघविध्वंसनम्॥
सर्वत्रान्वयमप्रयत्नसुलभं साधुप्रियं पावनं शंभोः
सत्रमवार्यमक्षयनिधिं शंसंति योगीश्वराः ॥ १६ ॥

भिक्षाहारमितिभिक्षाहारं योगीश्वराःशंसंति श्लाघां कुर्वंति । कथंभूतमदैन्यं दीनतां विना लभ्यमप्रतिहतं केनापि न निवार्यते भीतिच्छिदं भयहंतारं परोत्कर्षासहनं मत्सरस्तस्याभावो मात्सर्यं तन्नाशकंमोघं संघं सर्वत्रान्वयं स-

यैत्र प्राप्यते अप्रयत्नं व्यवहारकृष्यादिप्रयासरहितं शंभोः सत्रं शिवस्य यज्ञमिति ॥ १६ ॥

माधुकरीके अन्नकी महात्मा योगिजन सर्वदा स्तुति करें हैं कैसाहै,- माधुकरीका अन्न जो विना दीनतासें मिले है तथा कोई निवारणबी नहीं करे है राजदंडादिकभयके नष्टकरनेवालाहै परगुणोंका असहनरूप मत्स- रा तथा अहंकार अभिमान इनके नष्ट करनेवाला है तथा अध्यात्मादिक तीनतापोंकों नष्ट करे है तथा सर्वदेश नगरोंमे प्राप्तहोयहै तथा व्यवहार खेती आदिक प्रयत्नसें विना सुखसें ही लभेहै तथा साधु महात्माको प्रियहै पापोंकों नष्टकरेंहै महादेवजीका यज्ञ रूपहै जिस यज्ञकों कोई नहीं निवारणकरेंहै तथा महात्मोंकी अविनाशी खाणि है इति ॥ १६ ॥

मनुः।

भैक्षेण वर्तयेन्नित्यं नैकान्नाशी भवेद्व्रती ॥
भैक्षेण व्रतिनो वृत्तिरुपवाससमा स्मृता ॥ १७ ॥

भैक्षेणेति। व्रती यतिरेकान्नाशी एकान्नभोजी न भवेत् उपवाससमफलदेति ॥ १७ ॥

संन्यासी भिक्षाकरकेही नित्य देहका निर्वाह करे एकका अन्न भोजन नहींकरे संन्यासीकी भिक्षावृत्ति निर्जलव्रतके समान शास्त्रोंमें कथन करीहै इति ॥ १७ ॥

विष्णुः।

न भिक्षायां भवेद्दोषो न च भिक्षा प्रतिग्रहः ॥
सोमपानसमा भिक्षा तस्मादहरहश्चरेत् ॥ १८ ॥

न भिक्षायामिति। अहरहः दिने दिने चरेत् भक्षेदिति॥

भिक्षामें कछू दोष नहीं है तथा भिक्षा किसीका प्रतिग्रह बी नहीं अमृ- तके पानसदृश भिक्षा है तातें दिन दिन भिक्षा भोजन करे ॥ १८ ॥

मनुः ।

नापो मूत्रपुरीषाभ्यां नाग्निर्दहनकर्मणा ॥
न वायुः स्पर्शदोषेण नान्नदोषेण मस्करी ॥ १९ ॥

नाप इति । यथापो नदीसागरादिषु गतजलानि मूत्रपुरीषाभ्यां कृतेन दोषेणाशुद्ध्या नैव लिप्यंते अग्निर्मलादिदाहकर्मणा न लिप्यते वायुः स्पर्शदोषेण च तथा मस्करी भिक्षुरन्नदोषेण अन्नमात्रप्रतिग्रहेण न लिप्यत इति शेषः । तदुक्तं श्रीमद्भागवते । नैनः प्राप्नोति विद्वांश्च यावदर्थपरिग्रहः । भिक्षुः परिव्राट् कर्मंदी पाराशर्यपि मस्करीत्यमरः । मस्करो ज्ञानं वेणुर्वास्यातीति मस्करी ॥ १९ ॥

जैसे नदीआदिकोंका महान् जल मूत्र विष्ठा आदिकोंसे अशुद्ध नहीं होय है तथा अग्नि मलादिकोंके दाह करनेसें अशुद्ध नहीं होय है वायु मलीन पदार्थोंके साथ स्पर्श करके अशुद्ध नहीं होय हैं तैसे संन्यासी अन्नमात्रके प्रतिग्रह करके दोषकों नहीं प्राप्त होय है तैसे भागवतमे श्रीमंन भगवान्जीनें भी कहा है । शरीरके निर्वाहमात्र भोजनादिकके प्रतिग्रहको ग्रहण कर्त्ताहुआ विद्वान् पापको नही प्राप्त होय हैं इति ॥ १९ ॥

एककालं चरेद्भैक्षं न प्रसज्जेत विस्तरे ॥
भैक्षप्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जते ॥ २० ॥

तस्या नियममाह एककालमिति । विस्तरे द्विवाराटने वाऽहाराद्यधिकानयने न प्रसज्जेत संसक्तो न भवेत्तत्र हेतुमाहोत्तरार्द्धेन ॥ २० ॥

अब भिक्षामें नियम कहिते हैं । दिनमें एक काल भिक्षा मांगे दो काल मांगनेमें वा आहारसे अधिक मांगनेमें प्रीतिवाला नहीं होय क्योंकि भिक्षाके लोभमें संसक्त हूआ संन्यासी विषयोंमेंभी संसक्त होय है ॥२०॥

याज्ञवल्क्यः ।

संभवे बहुगेहानां न तु तेष्वेव नित्यशः ॥
नातिक्रमेद्गृहं मोहाद्यत्र बाधो न विद्यते ॥ २१ ॥

संभव इति । यस्मिन्नगरे बहुगेहानां गृहाणां संभवे सति येषु पूर्वदिवसे गतस्तेषु गृहेषु नित्यशो न गच्छेत् । बाधः सूतकादिरिति ॥ २१ ॥

यदि भिक्षाके योग्य बहुत गृहोंके हुए जिन गृहोंमें पूर्वदिन माधुकरी मांगीथी तिन गृहमें दूसरे दिन नहीं मागे किंतु नवीन नवीन गृहोंसे मांगे तथा जिस गृहमें सूतकादिक दोष नहीं होय तिस गृहकों द्वेष करके उल्लघन नही करे इति ॥ २१ ॥

मेधातिथिः ।

अदुष्टापतितं साधुं यतिर्यः परिवर्जयेत् ॥
स तस्य सुकृतं दत्त्वा दुष्कृतं प्रतिपद्यते ॥ २२ ॥

अतिक्रमणे दोषमाह अदुष्टापतितमिति । साधुं स्वधर्मवर्तिनं गृहस्थं स यतिस्तस्मै स्वसुकृतं दत्त्वा तस्य गृहस्थस्य दुष्कृतं पापं स्वयं प्रतिपद्यत इति ॥ २२ ॥

अब गृहके उल्लघनेमें दोष कहिते है । जातिसें उत्तम तथा पापोंसें रहित अपने धर्ममें वर्त्तने वाले गृहस्थके गृहकों जो सन्यासी उल्लघन करे है सो संन्यासी तिस गृहस्थकों अपने पुण्य देकर तिस गृहस्थके पापोंको प्राप्त होय है इति ॥ २२ ॥

तथैव तु गृहस्थस्य निराशो भिक्षुको गतः ॥
हुतं दत्तं तपोऽधीतं सर्वमादाय गच्छति ॥ २३ ॥

अदाने गृहस्थस्य दोषमाह तथैव त्विति । गृहिणो गृहा-

निराशो भिक्षुको यतिर्गतः संस्तस्य गृहस्थस्य हुतादि सर्वमादाय गृहीत्वा गच्छतीति ॥ २३ ॥

तैसेही गृहस्थके गृहसें संन्यासी खाली गया हुआ तिस गृहस्थके होम दान व्रत गीतादिकोंके पाठका फल यह सर्व ग्रहण करके जाय है इति॥ २३ ॥

मनुः ।

यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्त्वा विधिवद्गुरोः ॥
तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्त्वा द्विजो गृही॥ २४ ॥

तद्दाने फलमाह यत्पुण्यफलमितिविधिपूर्वं गुरवेगां दत्त्वा यत्पुण्यस्य फलं माप्नोति तत्फलं यतये भिक्षां दत्त्वेति॥२४॥

भिक्षाके देनेसें गृहस्थकों फल कहिते हैं। पुरोहितकों विधिपूर्वक गौ देकर जिस पुण्यके फलको प्राप्त होय है तिस पुण्यके फलकों त्रैवर्णिक गृहस्थ संन्यासीकों भिक्षा देकर प्राप्त होय है इति ॥ २४ ॥

यमः ।

उपानहौ विना भिक्षुः कृत्वा भिक्षाटनादिकम् ॥
मार्गे मूत्रसमाकीर्णे सम्यक् स्नानेन शुद्ध्यति ॥२५ ॥

उपानहौ विना न भिक्षयेदित्याह उपानहाविति । उपानहौ पादत्राणौ सम्यक् स्नानेन स चैलस्नानेनेति ॥ २५ ॥

विना जूतेसें भिक्षा नहीं मागे अब यह कहिते हैं । मूत्रादिक मलकरके संयुक्त मार्गमें जूता पाहिरेसें विना भिक्षा मागे वा किसी इतरकार्यके वास्ते जाय तो वस्त्रों सहित स्नान करसें शुद्ध होय है इति ॥ २५ ॥

वसिष्ठः ।

पादत्राणे स्थितो पादावस्पृश्यं स्पृशतो यदि॥
पादत्राणपरित्याग आचांतः शुद्धिमाप्नुयात् ॥ २६ ॥

सपादुकेऽदोषमाह पादत्राण इति। अस्पृश्यं मलमूत्रादि- आचांत आचमनं कृत्वा ॥ २६ ॥

जूतेसहित गमनेसे निर्दोषता कहिते हैं । यदि जूता पहिरे हुए मल- मूत्रादिकोंके साथ पादोंका स्पर्श होय तौ जूता उतारकरके आचमनसे ही शुद्धिकों प्राप्त होय है इति ॥ २६ ॥

दत्तात्रेयः ।

भिक्षाटने स्त्रियः काश्चिच्छ्रोत्रियाणां गृहे गृहे ॥
तासां विलोकनं कार्यं यथा मातुः स्वसुस्तथा ॥ २७ ॥

भिक्षाटन इति। श्रोत्रियाणां वेदाध्यापकानां विप्राणां स्वसुः भगिन्या इति ॥ २७ ॥

वेदाध्यापकादिक गृहस्थोंके गृहगृहमें जो स्त्रीयां हैं तिनकों माधुकरी मांगनेके समें माताभगिनीकेसमान देखे इति ॥ २७ ॥

आत्मसंमितमाहारमाहरेदात्मवान्यतिः ॥
अतिक्षुधितयापि वै समाधिर्नैव जायते ॥ २८ ॥

आत्मसंमितमिति। आत्मसंमितं स्वोदरपूर्णपरिमाणं न च न्यूनाधिकम्। न्यूने दोषमाह समाधिश्चित्तस्वास्थ्यमिति

आत्मविचारमें प्रवृत्त जो संन्यासी है सो अपनी क्षुधाके योग्य अन्न मांगे अधिक कम नहीं मांगे क्योंकि अतिक्षुधा करकेवी ईश्वरध्याना- दिकोंमें चित्तैकाग्र नहीं होय है ॥ २८ ॥

यमः।

अनावृते विशेद्द्वारि गृहे नैवावृते व्रजेत् ॥
न वीक्ष्येद्द्वाररंध्रेण भिक्षां लिप्सुः क्वचिद्यतिः॥२९॥

अनावृत इति । अनावृते द्वारि निरर्गलद्वारे रंध्रेण छिद्रेण लिप्सुर्भिक्षेच्छुः । द्वारशब्दो हलंतोपि ॥ २९ ॥

भिक्षाकी इच्छावाला संन्यासी खुले किवाड गृहोंमें प्रवेश करे, किवाडलगे गृहोंमें नहीं प्रवेश करे तथा द्वारके छिद्रोंमेंबी नहीं देखे इति॥२९॥

मेधातिथिः।

अकार्पण्यं तु बह्वन्नं मन्यंते यत्र मानवाः ॥
निरीक्ष्यंते त्वनुद्विग्नास्तद्गृहं यत्नतो व्रजेत् ॥३०॥

अकार्पण्यमिति। अकार्पण्यं कदर्यतारहितं बह्वन्नं भूयन्नं यत्र लभ्यते मन्यंते सत्कारं कुर्वंति अनुद्विग्ना उद्वेगरहिता इति॥ ३०॥

जिस गृहमें कृपणतासें रहित बहुत अन्न मिले है तथा जिसगृहमें पुरुष मान करें हैं तथा प्रीतिपूर्वक देखें हैं तिस गृहमें अवश्य भिक्षाके वास्ते जाय इति ॥ ३० ॥

शौनकः।

पीडयित्वापि स्वात्मानमल्पान्नं संप्रयच्छति ॥
सा भिक्षा हिंसता ज्ञेया तादृशीं वर्जयेद्यतिः ॥३१॥

पीडयित्वेति। स्वात्मानं पीडयित्वा स्वाहारसंकोचेन तादृशीं हिंसायुक्तामिति ॥ ३१ ॥

जो गृहस्थ अपने आपको कष्टदेके अल्पान्न देय है सो भिक्षा हिंसासंयुक्त जाननी ऐसी भिक्षाकों संन्यासी नहीं ग्रहण करे ॥ ३१ ॥

पंचाहं सप्तरात्रं वा यत्र भिक्षा न लभ्यते ॥
तद्गृहं वर्जयेद्भिक्षुश्चांडालगृहवत्सदा ॥ ३२ ॥

पंचाहमिति। पंचाहं पंचदिवसं यत्र गृहे ॥ ३२ ॥

पांच दिन वा सप्तरात्रितक जिस गृहमें भिक्षा नहीं मिले तिस गृहको चांडालोंके गृहसमान सदा संन्यासी त्यागे इति ॥ ३२ ॥

अंगिराः ।

प्रतिग्रहं न गृह्णीयान्न चैवान्यं प्रदापयेत् ॥
प्रेरयेद्वा तथा भिक्षुर्न स्वप्नेऽपि कथंचन ॥ ३५ ॥

प्रतिग्रहमिति । भिक्षामात्रादन्यं प्रतिग्रहं न गृह्णीयात् अन्यं प्रति तावन्मात्रमपि न प्रदापयेत् न दद्यात् भो देवदत्त त्वमस्मै भोजनं देहीत्येवं न प्रेरयेदिति ॥ ३५ ॥

भिक्षामात्रसें अधिक प्रतिग्रह संन्यासी नही ग्रहण करे तथा इतर पुरुषोंको आप भिक्षामात्रबी नहीं देय तथा इतर साधु ब्राह्मणके वास्ते गृहस्थोंको कबी नही प्रेरे इति ॥ ३५ ॥

जाबालः ।

अन्नदानपरो भिक्षुर्वस्त्रादीनां च संग्रही ॥
उभौ तौ मंदबुद्धित्वात्पूतिनरकशायिनौ ॥ ३६ ॥

तद्दाने दोषमाह अन्नदानपर इति त्रिभिः । पूतिनामनरकके शायिनौ भविष्यत इति शेषः ॥ ३६ ॥

अब तिसके दानमें तिसको दोष कहिते हैं तीन श्लोकों करके । जो संन्यासी अन्नदान करे है तथा जो संन्यासी वस्त्रादिकोंका संग्रह करे है ते दोनो मंदबुद्धिवाले होनेसे दुर्गंधियुक्त नरकको प्राप्त होतेहैं इति॥३६॥

माधुकरं समाहृत्य ब्राह्मणेभ्यो ददाति यः ॥
स याति नरकं विप्रो भोक्ता चांद्रायणं चरेत् ॥ ३७ ॥

माधुकरमिति । यो यतिः स यतिर्नरकं यातिं भोक्ता विप्रश्च चांद्रायणं शुद्ध्यर्थं चरेदिति ॥ ३७ ॥

जो संन्यासी माधुकरी ल्याकरके ब्राह्मणोंके तांईं देवे है सो संन्यासी तौ नरकको जाय है और संन्यासीकी माधुकरी खानेवाला ब्राह्मण शुद्धिके वास्ते चांद्रायणव्रत करे इति ॥ ३७ ॥



अन्नदानपरो भिक्षुश्चत्वारि हंति दानतः ॥
दातारमन्नमात्मानं यस्मै चान्नं प्रयच्छति ॥ ३८ ॥

अन्नदानपर इति । येन यतयेऽन्नं दत्तं स दातारं हंति नरकं प्रापयति अन्नस्य हननं निरादर इति ॥ ३८ ॥

अन्नदान करनेवाला संन्यासी चारोंको नष्ट करे है एक तौ जिस गृहस्थसें अन्न ल्याकरके दान कराथा, दूसरा अन्नकों, तीसरे अपने आपकों, चौथा जिसके तांई दान देय है इति ॥ ३८ ॥

पराशरः ।

यतीनामातुराणां च वृद्धानां दीर्घरोगिणाम् ॥
एकान्ने नैव दोषोऽस्ति एकस्यापि दिने दिने ॥ ३९ ॥

आपद्येकस्याप्यन्नग्रहणे नैव दोषोस्तीत्याह यतीनामिति त्रिभिः । एकगृहस्थस्यैकस्मिन्दिवसेऽन्नग्रहणे दोषो नास्ति एकगृहस्थस्य दिने दिने सदैवान्नग्रहणेऽपि च दोषो नास्तीति ॥ ३९ ॥

आपदाकालमें एकके अन्नग्रहणमेंबी दोष नहीं है अब यह कहिते हैं तीन श्लोकों करके । व्याकुलचित्त तथा वृद्ध तथा चिरकालसें रोगी संन्यासीयोंकों एक गृहस्थके एक दिन अन्नके ग्रहणमें दोष नहीं है तथा एक गृहस्थका अन्न नित्य ग्रहण करनेमेंबी दोष नहीं है इति ॥ ३९ ॥

क्रतुः ।

सुजीर्णोऽतिकृशो योगी देशांताद्विकलेंद्रियः ॥
पुत्रमित्रगुरुभ्रातृपत्नीभ्यो भैक्षमाहरेत् ॥ ४० ॥

सुजीर्ण इति सुजीर्णो तिवृद्धः रोगादिनातिकृशो, योगी यतिः देशांतात् देशभ्रमणेन व्याकुलेंद्रिय इति ॥ ४० ॥

अतिवृद्ध तथा रोगादिकों करके दुर्बल तथा देशोंमें विचरणसें व्याकु-

लेंद्रिय संन्यासी पुत्र मित्र पुरोहित भ्राता अपनी स्त्रीसें भिक्षाकों ग्रहण करलेय इति ॥ ४० ॥

अयाचितं यथालाभं भोजनाच्छादनं भवेत् ॥
निमंत्रितोऽथवाऽश्नीयात् स्वगुणं न प्रकाशयेत् ४१

तत्रापि तेभ्यो न याचयेदित्याह अयाचितमिति । स्वगुणं विद्यादिं तेभ्यो न दर्शयेदिति ॥ ४१ ॥

तिन पुत्रादिकोंसेंबी याचना नहीं करे अब यह कहिते है । याचनासे विना निमंत्रिण कराहुआ वा ईश्वरकी इच्छासें जो भोजन वस्त्रका लाभ होय सो ग्रहण करे परंतु अपने गुणोंको भोजनादिकोंके वास्ते प्रकट नहीं करे इति ॥ ४१ ॥

दत्तात्रेयः ।

कृते देशं त्यजेद्ग्रामं त्रेतायां द्वापरे कुलम् ॥
कर्त्तारं तु कलौ दुष्टं त्यक्त्वा भैक्षं समाचरेत्॥४२॥

ननु यदुक्तं शुद्धस्यान्नं गृह्णीयान्न दुष्टस्येति कलौ दुष्टबहुत्वात्कथं कुर्यादित्याशंक्याह कृत इति । कृते सत्ययुगे यस्मिन्देशे दुष्टो भवेत्तं देशं त्यजेत् । त्रेतायुगे यस्मिन्ग्रामे तद्भवेत्तं ग्रामं त्यजेत् । द्वापरे यस्मिन्कुले दुष्टो भवेत्तं कुलं त्यजेत् । कलियुगे केवलं दुष्टं त्यक्त्वा भैक्षं समाचरेदिति४२

प्रश्न-पूर्वे जो कथन कराथा कि शुद्ध पुरुषका अन्न ग्रहण करे दुष्टका नहीं करे और कलियुगमें दुष्टोंकों बहुत होनेसे कैंसे देहका निर्वाह करे । उत्तर । सत्ययुगमें जिस देशमें दुष्ट होय तिस देशकों त्याग देय, त्रेतायुगमे जिस ग्राममें दुष्ट होय तिस ग्रामकों त्याग देय, द्वापरमें जिस कुलमें दुष्ट होय तिस कुलकों त्याग देय; कलियुगमें तो पापकर्म करनेवाले दुष्टपुरुषका त्याग करके इतर तिसके पिता भ्रातादिक बांधवोंसें भिक्षा ग्रहण करलेय इति ॥ ४२ ॥

मनुः ।

नोच्छिष्टं कस्यचिद्द्यान्नाद्याच्चैव तथांतरः ॥
न चैवात्यशनं कुर्यान्न चोच्छिष्टः क्वचिद्व्रजेत् ॥ ४३ ॥

नोच्छिष्टमिति । अंतरा भिक्षाटनात्पूर्वं नाद्यान्नाश्नीयात् अत्यशनं न कुर्यादिति ॥ ४३ ॥

अपना जूठा किसीको नहीं देय तथा आपभी किसीका जूंठा नहीं खाय तथा माधुकरीके मांगनेसें पूर्व कछू नहीं खाय तथा बहुत भोजनभी नहीं करे तथा जूंठे हस्त मुख हुआ कभी गमन नहीं करे इति ॥ ४३ ॥

अत्रिः ।

करे कर्पटके चैव आयसे ताम्रभाजने ॥
भुंजन्भिक्षुर्न लिप्येत लिप्यंते गृहमेधिनः ॥ ४४ ॥

अथ भिक्षापात्राण्याह कर इति । गृहस्थानामायसादिपात्रेषु यतिर्भुंजन्न लिप्येत न दुष्यति गृहमेधिनो गृहस्थास्तु तेषु करादिषु भुंजाना लिप्यंते दुष्यंति कर्पटके वस्त्रे आयसे लोहमय इति ॥ ४४ ॥

अब भिक्षाके योग्य पात्र कहिते हैं । अपने हस्तमें तथा वस्त्रमें वा गृहस्थोंके लोह तांबके पात्रमें संन्यासी भोजन करताहुआ दोषको नहीं प्राप्त होय है और गृहस्थलोक हस्तादिकोंमें भोजन करनेसें दोषको प्राप्त होय है इति ॥ ४४ ॥

पितामहः ।

सौवर्णलोहरौप्येषु ताम्रायश्मयेषु च ॥
अश्नन्भिक्षुर्न दुष्येत दुष्यते तु परिग्रहात् ॥ ४५ ॥

सौवर्णलोहरौप्येष्विति । अश्ममये पाषाणमये दुष्यते तु मेषां सौवर्णादिपात्राणां परिग्रहात्संग्रहादिति ॥ ४५ ॥

सुवर्ण लोह रुपा ताम्रादिक सर्वधातु शिलाके पात्रमें भोजन कर्त्ता हुआ संन्यासी दोषको नहीं प्राप्त होय है दोष तौ तिन सुवर्णादिक पात्रोंके ग्रहण करनेसें होय है इति ॥ ४५ ॥

याज्ञवल्क्यः ।

यतिपात्राणि मृद्वेणुदार्वालाबुमयानि च ॥
सलिलं शुद्धिरेतेषां गोवालैश्चावघर्षणम् ॥ ४६ ॥

यतिग्रहणयोग्यपात्राण्याह यतिपात्राणीति । मृत्तिकावंशकाष्ठतुम्बिकामयानि एषां पात्राणां जलेन शुद्धिर्भवति अवघर्षणं तक्षणम् अशुद्धेर्न्यूनाधिक्येन त्रयाणां ग्रहणम्४६॥

अब संन्यासीके ग्रहणकरनेयोग्य पात्र कहिते हैं । मृत्तिकाकापात्र बांसकापात्र काष्ठकापात्र तूंबा यह चार संन्यासीके पात्र हैं इनकी शुद्धि जलकरके धोनेसें होय है वा गौके पुच्छके बालोंके स्पर्श करके; यदि विशेष अशुद्धि होय तौ छोलनेसें शुद्ध होय है ॥ ४६ ॥

अत्रिः ।

श्वकाकगर्दभैरुष्ट्रैर्जंबुकैर्वानरैस्तथा ॥
चांडालपतितैः स्पृष्टं यतिः पात्रं विसर्जयेत् ॥४७॥

अत्यन्ताशुद्धौ पात्रं त्यजेदित्याह श्वकाकगर्दभैरिति । गर्दभैः खरैः जम्बुकैः शृगालैः ॥ ४७ ॥

अत्यंताशुद्धिके हूए पात्रको त्याग देय अब यह कहिते है । श्वान काक खर ऊंट गीदड वानर चांडाल इत्यादिक औरबी नीचजातिवालोंके साथ यदि पात्रका स्पर्श होय तौ संन्यासी पात्रको त्यागदेय ॥४७॥

मार्जारमक्षिकाकीटपतंगकृमिदर्दुराः ॥
मेध्यामेध्यं स्पृशंतोऽपि नोच्छिष्टं मनुरब्रवीत् ४८॥

इति श्रीवैराग्यभास्करे यतिधर्मेषु भिक्षभेद-
वर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मार्जारो बिडाल दर्दुरो मंडूकः मेध्यामेध्यं शुद्धाशुद्धमेतेषां स्पर्शेऽपि पात्रान्नयोर्नैवाशुद्धिरित्यर्थः ॥ ४८ ॥

इति श्रीवैराग्यभास्करसंस्कृतव्याख्यायां
सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

बिल्ली मक्षी कीट पतंग तथा अन्नका कीट मेंडक यह जीव यद्यपि शुद्धाशुद्ध पदार्थोंको स्पर्श करेंही है तौ बी इनके स्पर्शसें अन्न वा पात्रकी अशुद्धि मनुजी नही कहिते भये हैं इति ॥ ४८ ॥

इति श्रीवैराग्यभास्करभाषाटीकायां
सप्तमोऽध्याय समाप्त. ॥ ७ ॥

श्रीभागवते ।

विभृयाद्यद्यसौ वासः कौपीनाच्छादनं परम् ॥
त्यक्तं न दंडलिंगादेरन्यत्किंचिदनापदि ॥ १ ॥

अथ विधिनिषेधात्मकसंकीर्णसंन्यासधर्मानाह विभृयादिति । संन्यासं कृत्वा दिगम्बरे असमर्थः सन् यद्यसौ यतिर्वासो वस्त्रं विभृयात् धारयेत् तदा यावता वस्त्रेण कौपीनमाच्छाद्यते तावन्मात्रं दंडलिंगादेर्दंडकाषायवस्त्रादेरन्यत्संन्यासकाले यत्त्यक्तं तदनापदि न गृह्णीयादिति ॥ १ ॥

अब विधि निषेध रूपमिलेहुए सन्यासके धर्मोंकों कहिते है । संन्यास करके यादि नगन रहिनेमें असमर्थ हुआ वस्त्र ग्रहणकरे तौ कौपीनकों आच्छादन करनेवाला कटिवस्त्र रखे दंड तथा काषाय वस्त्रसें विना जो सन्यास करने समे धनादिक त्यागेथे तिनकों विना आपदासे नही ग्रहण करे इति ॥ १ ॥

नासच्छास्त्रेषु सज्जेत नोपजीवेत जीविकाम् ॥
वादवादांस्त्यजेत्तर्कान्पक्षं कं च न संश्रयेत् ॥ २ ॥

नासच्छास्त्रेष्विति । असच्छास्त्रेषु न्यायज्योतिषादिषु न सज्जेत न पठेत् जीविकां नक्षत्रविद्यादिवृत्तिं वादवादान् जल्पवितंडादिरूपान् कमपि पक्षं भेदाभेदादिं विवादाय न संश्रयेत् नाश्रयेदिति ॥ २ ॥

असत्यवस्तुके कथनकरनेवाले न्यायज्योतिषादिक शास्त्रोंको नहीं पढे तथा वैदगी आदिकोसें जीविकाबी नहीं करे तथा जल्प वितंडा- युक्त तर्कोंकोबी त्यागे तथा विवादके वास्ते किसी भेदाभेदादिक पक्ष- कोंबी नहीं अंगीकार करे । अपने मतकी सिद्धिवास्ते जो शास्त्रार्थ करा- जाय है सो जल्पवाद है और जिस शास्त्रार्थमें न अपने न दूसरेके मतकी सिद्धि होय सो वितंडावाद है इति ॥ २ ॥

न शिष्याननुबध्नीयाद्ग्रंथान्नैवाभ्यसेद्बहून् ॥
न व्याख्यामुपयुंजीत नारंभानारभेत्क्वचित् ॥ ३ ॥

न शिष्यानिति । बहून् शिष्याननुबध्नीयात् नैव कुर्यात् बहून् ग्रंथानपि नैवाभ्यसेत् न च पठेत् न च व्याख्यामुपयु- जीत कथां न कुर्याल्लोभायेति शेषः आरंभान्मठादिव्या- पारान् ॥ ३ ॥

बहुत चेले नहीं करे तथा बहुत ग्रंथोंकोंबी नहीं पढे तथा लोभके वास्ते कथाबी नहीं करे तथा मकान बगीचा आदिकोंका आरंभबी नहीं करे इति ॥ ३ ॥

विष्णुस्मृतिः ।

वानप्रस्थगृहस्थाभ्यां प्रीतिं यत्नेन वर्जयेत् ॥
ग्रामांते निर्जने देशे नित्यं कृतनिकेतनः ॥ ४ ॥

वानप्रस्थगृहस्थाभ्यामिति । ग्रामांते ग्रामाद्बहिः कृतं निकेतनं निवासालयो येनेति ॥ ४ ॥

वानप्रस्थ तथा गृहस्थोंके साथ प्रीतिकों त्यागे ग्रामसें बाहिर एकांतस्थानमें नित्यही निवास करे इति ॥ ४ ॥

वृद्धानामातुराणां च भीरूणां संगवर्जितम् ॥
ग्रामे वाथ पुरे वापि वासो नैकत्र दुष्यति ॥ ५ ॥

तत्तु समर्थान्प्रत्युक्तमधुनाऽसमर्थान्प्रत्याह वृद्धानामिति । आतुराणां रोगादिभिर्व्याप्तानां वनवासाद्भीरूणां युवत्यादिसंगरहितमेकत्र ग्रामे वा पुरे वासो नैव दुष्यतीति ॥ ५ ॥

पूर्वोक्त वाक्य समर्थोंप्रति जानना अब असमर्थोंप्रति कहिते हैं । जो वृद्ध संन्यासी हैं तथा रोगादिकों करकेदुःखी हैं तथा वनके निवाससें भयमाने हैं तिनकों कुसंगसेरहित ग्राम वा शहिरमें एकत्र निवास दोषवाला नहीं है इति ॥ ५ ॥

अंगिराः ।

न तीर्थसेवी चात्यंतो नोपवासपरो यतिः ॥
न चाध्यापनशीलः स्यन्न व्याख्यानपरो भवेत् ६ ॥

न तीर्थसेवीति । आत्मविचारं परित्यज्यान्यसाधनेषु प्रीतिं न कुर्यादिति भावोऽक्षरार्थस्तु स्पष्टः ॥ ६ ॥

अत्यंत तीर्थवासीबी न होय तथा एकादशी आदिक व्रतोंकाबी हठ नहीं करे तथा विद्याके पढानेमें बी अत्यंत तत्पर नहीं होय तथा सदा कथा करनेमेंबी तत्पर नहीं होय तात्पर्य यह है कि आत्मविचारकों त्यागके इतर साधनोंमें प्रीति नहीं करे इति ॥ ६ ॥

क्रतुः ।

दासीं दासं गृहं यानं गोभूधान्यं धनं रसान् ॥
प्रतिगृह्य यतिर्ग्रामं हन्यात्कुलशतत्रयम् ॥ ७ ॥

दासीमिति यानमश्वादिसर्ववाहनं भूः पृथिवी धान्यमामात्र रसान् घृतादीन् आमं हन्याद्ग्रामहननसमदोषं लभेत् स्वकुलशतत्रयं हन्याच्चेति ॥ ७ ॥

दासी दास गृह घोडा आदिक असवारी गौ पृथिवी चामलादिक कच्चा अन्न धन घृतादिक रस इन सर्व वस्तुओंमेंसें किसी एककोंवी ग्रहण करके सन्यासी ग्राममारेके दोषको प्राप्त होय है तथा अपनी तीनशत कुलको नरकको प्राप्त करे है इति ॥ ७ ॥

पुष्पशाखापल्लवं च फलमूलतृणादिकम् ॥
भंज्याद्धि यस्तु संन्यासी नरके पतति ध्रुवम्॥ ८ ॥

पुष्पशाखापल्लवमिति ।भंज्यात् द्वैधीकरोति ध्रुवं निश्चयेनेति ॥ ८ ॥

पुष्प शाखा पत्र फल मूली आदिक मूलतृण इत्यादिक स्थावर मात्रकों जो सन्यासी तोडे है सो निश्चय करकें नरकमे पडे है ॥ ८ ॥

अंगिरा ।

क्षेत्रं गावो हिरण्यं च यतेर्यस्य परिग्रहः ॥
तादृशं कल्मषं दृष्ट्वा सचैलो जलमाविशेत् ॥ ९ ॥

स्वधर्मत्यागिनो यतेर्दर्शनमपि दुरितकरमित्याह क्षेत्रमिति त्रिभिः । क्षेत्रं भूमिः हिरण्यं सुवर्णं सर्वधातूनामुपलक्षणम् परिग्रहः संग्रहः कल्मषं पतितमित्ति ॥ ९ ॥

अपने धर्म त्यागनेवाले सन्यासीका दर्शनमात्रवी पापके देनेवाला है तीन श्लोकों करके अब यह कहिते है । पृथिवी गौ सुवर्णादिक धातु जिस संन्यासीके संग्रह है तिस पापीकों देखके सहित वस्त्रोंके स्नान करे इति ॥ ९ ॥

हारीतः ।

छेदने भेदने पाके यतिर्यस्तु प्रवर्त्तते ॥
तादृशं कल्मषं दृष्ट्वा प्रेतशौचं विधीयते ॥ १० ॥

छेदन इति। छेदने काष्ठादीनां छिद्रकरणे भेदने तेषां खंडखंडकरणे प्रेतं मृतं स्पृष्ट्वा यच्छौचं क्रियते तत्कुर्यादित्यर्थः ॥ १० ॥

काष्ठोंके छेद करनेमें तथा तिनोंके टूक टूक करनेमें तथा अन्नके पकानेमें जो संन्यासी प्रवृत्त होय है तिस पापीकों देखके प्रेतशौच करे अर्थात् मृतशरीरको स्पर्श करके जो स्नानादिक शौच करायाहै तिसकों करे इति ॥ १० ॥

अंगिराः ।

विधवां कंचुकोपेतां सधवां कंचुकं विना ॥
यतिं च कंचुकोपेतं दृष्ट्वा चक्षुर्निमीलयेत् ॥ ११ ॥

विधवामिति । विधवां मृतभर्तृकां सधवां जीवद्भर्तृकां कंचुकं चोलकमिति ॥ ११ ॥

कुडती पहिरी हुई विधवा स्त्रीकों देखके तथा पतिवाली स्त्रीकों कुडतीसें विना देखके तैसें संन्यासीकों कुडती पहिरा हुआ देखके देखनेवाला अपने नेत्रोंकों मूंदलेय इति ॥ ११ ॥

भारते ।

न शिल्पजीविकां जीवेद्धिरण्यं नैव कामयेत् ॥
न द्वेष्टा नोपदेष्टा च भवेदेवं निरुपस्कृतः ॥ १२ ॥

न शिल्पजीविकामिति । गीतनृत्यादिकं यत्कर्म तच्छिल्पं भित्त्यादौ चित्रलेखनं वा हिरण्यं सुवर्णं निरुपस्कृतो निरुपस्कर इति ॥ १२ ॥

गीतनृत्यादिक करके जीविका नही करे तथा सुवर्णकीबी इच्छा नही करे किसीके साथ द्वेष नही करे उपदेशकरनेवाला आचार्यबी नहीं बने इस प्रकार सर्व अनात्मसामग्रीसें रहितहोय इति ॥ १२ ॥

कपालं वृक्षमूलानि कुचैल्यमसहायता ॥
उपेक्षा सर्वभूतानामेतावद्भिक्षुलक्षणम् ॥ १३ ॥

कपालमिति । कपाल वेण्वादीनां पात्र वर्षातपनिवृत्त्यर्थ वृक्षमूलानि कुचैल्य गैरिकारजितवस्त्रमिति ॥ १३ ॥

तूबा आदिक पात्र तथा वर्षा धूपकी निवृत्तिवास्ते वृक्षोंके नीचे वास गेरूकरके रगा हुआ वस्त्र तथा दूसरेकी सहायताका त्याग मित्रशत्रुभावकों त्यागके सर्वजीवोंके तरफसें उदासीन रहिना यह पांच प्रकारका सन्यासीका चिन्ह है इति ॥ १३ ॥

मेधातिथिः ।

स्थावरजंगमबीजान्यौषधं विषमायुधम् ॥
ज्योतिषं च षडेतानि त्यजेन्मूत्रपुरीषवत् ॥ १४ ॥

स्थावरजगमबीजानीति।स्थावराणामलाब्वादीनां बीजानि जंगमबीजानि शुकवानरादीनां पोताः पुरीषं विष्ठेति १४

तूबे आदिकोंका बीज तथा तोता बदरादि जगम औषधी जमालगोटादिकविष तथा कुठारादिक शस्त्र ज्योतिषशास्त्र इन षट् वस्तुकों मूत्रविष्ठाकी न्याई सन्यासी त्यागे इति ॥ १४ ॥

अत्रिः ।

कौपीनयुगलं कंथा दंडमेकं परिग्रहः ॥
यतेः परमहंसस्य नाधिकं तु विधीयते ॥ १५ ॥

कौपीनयुगलमिति । अधिकवस्त्रादीनां संग्रहो न विधीयते शास्त्रेषु न कथ्यत इति ॥ १५ ॥

दो कौपीन तथा गोदडी एक दंड इतना संग्रह परमहंस संन्यासी कों कहा है इससे अधिक वस्त्रादिकोंका संग्रह शास्त्रमें नहीं कथन करा इति ॥ १५ ॥

यदि वा कुरुते रागादधिकस्य परिग्रहः ॥
नरकं रौरवं गत्वा तिर्यग्योनिषु जायते ॥ १६ ॥

अधिकग्रहणे दोषमाह यदिवेति।तिर्यक् सर्पादिरिति ॥१६॥

अब अधिक ग्रहणमें दोष कहिते है । यदि पूर्वोक्त तिन तीनवस्तुसें अधिक धन वस्त्रादिक रागसे ग्रहण करे है तो रौरवनाम नरककों प्राप्त होकर पश्चात् सर्पादिक तिरछी योनियोंमें जन्मे है इति ॥ १६ ॥

विशीर्णान्यमलान्येव चैलानि ग्रथितानि तु ॥
कृत्वा कंथां बहिर्वासो धारयेद्धातुरंजिताम् ॥ १७ ॥

तर्हि किं नवांबराणां कंथा धारयेन्नैवमित्याह विशीर्णानीति । विशीर्णानि जीर्णानि धातुरंजितां गैरिकरंजितामिति ॥ १७ ॥

सो गोदडीबी नवीनवस्त्रोंकी नही बनाय किंतु फटे पुराणे वस्त्र जलकरकें शुद्ध करेहूए सीवके गोदडी बनायके गेरूमें रंगके ऊपर धारण करे इति ॥ १७ ॥

अत्रिः ।

न स्नानमाचरेद्भिक्षुः पुत्रादिनिधने श्रुते ॥
पितृमातृक्षयं श्रुत्वा स्नात्वा शुद्ध्यति सांबरः ॥
न कुर्यात्सूतकं भिक्षुः श्राद्धपिंडोदकक्रियाः॥१८॥

ननु स्वात्मरक्षार्थं तु भिक्षाकंथामात्रं भवतु नैवाधिकमपेक्षते किं च पित्रादिमृते तेषां पारलौकिककर्मार्थं तु हिरण्याद्युपस्करमपेक्षत इत्याशंक्य तेषां मृते न किंचिदपि

यतिना करणीयमित्याह न स्नानमिति । पुत्रादीनां निधने मरणे श्रुते यतिः स्नानमात्रमपि न कुर्यादधिकं तु कुतः । मातापित्रोः क्षयं मरणं श्रुत्वा सचैलस्नानमात्रं कुर्यान्नतु पिंडादीनिति ॥ १८ ॥

प्रश्न—अपने शरीरकी रक्षावास्ते तौ भिक्षा कंथा मात्रही बहुत है अधिकको कछु आवश्यकता नहीं परंतु पिताआदिकोंके मरे हुए तिनकी क्रिया पिंडके वास्ते तौ सर्वसामिग्री चाहिती है । उत्तर । तिनके मरे पश्चात् संन्यासीकों कछूबी पिंडादिक कर्तव्य नहीं है अब यह कहिते हैं । मातापितासें इतर पुत्रादिबांधवोंका मरण श्रवण करेहुए स्नानमात्र क्रियाबी नहीं करे और मातापिताका मरण श्रवण करके केवल सहित वस्त्रोंके स्नानमात्रसेंही शुद्ध होय है और अधिक तिनके निमित्त सूतक रखना श्राद्धकरना गयाआदिक तीर्थोंमें पिंड तिलांजली आदिक कोई बी क्रिया संन्यासी नहीं करे इति ॥ १८ ॥

दत्तात्रेयः ।

जायाभ्रातृसुतादीनां बंधूनां च शुभाशुभम् ॥
दृष्ट्वा श्रुत्वा न कंपेत शोकहर्षौ त्यजेद्यतिः॥ १९ ॥

जायाभ्रातृसुतादीनामिति । जाया भार्या शुभाशुभं सुखदुःखौ श्रुत्वा हर्षशोकौ त्यजेत् तौ दृष्ट्वा न कंपेत मनसि क्षोभं न कुर्यादिति ॥ १९ ॥

स्त्री भ्राता पुत्रादिक बांधवोंके सुखदुःख कों श्रवण करके हर्ष शोक नहीं करे तथा तिनके सुखदुःखकों देखके संन्यासी मनमें क्षोभ नहीं करे इति ॥ १९ ॥

अत्रिः ।

अश्रुपातं यदा कुर्याद्भिक्षुः शोकेन चार्दितः ॥
योजनानां शतं गत्वा तदा पापात्प्रमुच्यते ॥ २० ॥

दो कौपीन तथा गोदडी एक दंड इतना संग्रह परमहंस संन्यासी कों कहा है इससे अधिक वस्त्रादिकोंका संग्रह शास्त्रमें नहीं कथन करा इति ॥ १५ ॥

यदि वा कुरुते रागादधिकस्य परिग्रहः ॥
नरकं रौरवं गत्वा तिर्यग्योनिषु जायते ॥ १६ ॥

अधिकग्रहणे दोषमाह यदिवेति।तिर्यक् सर्पादिरिति ॥१६॥

अब अधिक ग्रहणमें दोष कहिते हैं । यदि, पूर्वोक्त तिन तीनवस्तुसें अधिक धन वस्त्रादिक रागसें ग्रहण करे है तो रौरवनाम नरककों प्राप्त होकर पश्चात् सर्पादिक तिरछी योनियोंमें जन्मे है इति ॥ १६ ॥

विशीर्णान्यमलान्येव चैलानि ग्रथितानि तु ॥
कृत्वा कंथां बहिर्वासो धारयेद्धातुरंजिताम् ॥ १७ ॥

तर्हि किं नवांबराणां कंथां धारयेन्नैवमित्याह विशीर्णानीति । विशीर्णानि जीर्णानि धातुरंजितां गैरिकरंजितामिति ॥ १७ ॥

सो गोदडीबी नवीनवस्त्रोकी नही बनाय किंतु फटे पुराणे वस्त्र जलकरके शुद्ध करेहुए सीवके गोदडी बनायके गेरूमें रंगके ऊपर धारण करे इति ॥ १७ ॥

अत्रिः ।

न स्नानमाचरेद्भिक्षुः पुत्रादिनिधने श्रुते ॥
पितृमातृक्षयं श्रुत्वा स्नात्वा शुद्ध्यति सांबरः ॥
न कुर्यात्सूतकं भिक्षुः श्राद्धपिंडोदकक्रियाः ॥१८॥

ननु स्वात्मरक्षार्थं तु भिक्षाकंथामात्रं भवतु नैवाधिकमपेक्षते किं च पित्रादिमृते तेषां पारलौकिककर्मार्थं तु हिरण्याद्युपस्करमपेक्षत इत्याशंक्य तेषां मृते न किंचिदपि

यतिना करणीयमित्याह न स्नानमिति। पुत्रादीनां निधने मरणे श्रुते यतिः स्नानमात्रमपि न कुर्यादधिकं तु कुतः। मातापित्रोः क्षयं मरणं श्रुत्वा सचैलस्नानमात्रं कुर्यान्नतु पिंडादीनिति ॥ १८ ॥

प्रश्न—अपने शरीरकी रक्षावास्ते तौ भिक्षा कंथा मात्रही बहुत है अधिकको कछु आवश्यकता नहीं परंतु पिताआदिकोंके मरे हुए तिनकी क्रिया पिंडके वास्ते तौ सर्वसामिग्री चाहिती है। उत्तर। तिनके मरे पश्चात् संन्यासीकों कछुभी पिंडादिक कर्तव्य नहीं है अब यह कहिते हैं। मातापितासें इतर पुत्रादिबांधवोंका मरण श्रवण करेहूए स्नानमात्र कियाभी नहीं करे और मातापिताका मरण श्रवण करके केवल सहित वस्त्रोंके स्नानमात्रसेंही शुद्ध होय है और अधिक तिनके निमित्त सूतक रखना श्राद्धकरना गयाआदिक तीर्थोंमें पिंड तिलांजली आदिक कोई भी क्रिया संन्यासी नहीं करे इति ॥ १८ ॥

दत्तात्रेयः।

जायाभ्रातृसुतादीनां बंधूनां च शुभाशुभम् ॥
दृष्ट्वा श्रुत्वा न कंपेत शोकहर्षौ त्यजेद्यतिः॥ १९ ॥

जायाभ्रातृसुतादीनामिति। जाया भार्या शुभाशुभं सुखदुःखौ श्रुत्वा हर्षशोकौ त्यजेत् तौ दृष्ट्वा न कंपेत मनसि क्षोभं न कुर्यादिति॥ १९॥

स्त्री भाता पुत्रादिक बांधवोंके सुखदुःख कों श्रवण करके हर्ष शोक नहीं करे तथा तिनके सुखदुःखकों देखके संन्यासी मनमें क्षोभ नहीं करे इति ॥ १९ ॥

अत्रिः।

अश्रुपातं यदा कुर्याद्भिक्षुः शोकेन चार्दितः॥
योजनानां शतं गत्वा तदा पापात्प्रमुच्यते ॥ २० ॥

शोके कृते प्रायश्चित्तमाह अश्रुपातमिति । बंधूनां दुःखजन्यशोकेनार्दितः पीडितः ॥ २० ॥

अब शोक करनेसें प्रायश्चित्त कहिते हैं । बांधवोंके दुःखजन्य शोक करके दुःखी हूआ संन्यासी यदि नेत्रोंमें जल त्यागे तब शतयोजन मार्ग गमन करके तिस पापसें छूटे है इति ॥ २० ॥

दत्तात्रेयः ।

इष्टानिष्टेषु भोगेषु व्यसनाभ्युदयेषु च ॥
उपशांतां वदेद्वाचमपि बाणैर्हतो भृशम् ॥ २१ ॥

इष्टानिष्टेष्विति । व्यसनाभ्युदयेषु दुःखविद्यादिदैवीसंपत्सु उपशांतां दैन्याभिमानरहितां भृशमतिशयेनेति ॥ २१ ॥

वांछित अवांछित अन्नादिक भोगोंके प्राप्त हूए तथा दुःख और विद्यादिक दैवी संपत्तीके प्राप्त हूएबी शांत बाणी बोले चाहे सैंकडे बाणों करके अतिशय करके हनन करा हूआ बी होय अर्थात् दुःखकालमें क्रोध नहीं करे विद्यादिकोंकी प्राप्ति कालमें अहंकार नहीं करे इति २१॥

सत्यां वाचमहिंस्रां च वदेदनपवादिनीम् ॥
अतिवादांस्तितिक्षेत अनृशंसामपैशुनाम् ॥ २२ ॥

सत्यमिति सत्यां वाचं वदेत् । कथंभूताम हिंस्रां हिंसारहितामनपवादिनीं निंदावर्जितामनृशंसामक्रूरामपैशुनां परस्मै परदोषकथनशून्यामिति ॥ २२ ॥

सत्य तथा हिंसासें रहित परनिंदासें रहित क्रूरतासें वर्जित परदोषोंके कथनसें रहित बाणीकों बोले तथा जल्पवितंडादिक अतिवादोंकों नहीं करे इति ॥ २२ ॥

मनुः ।

सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ॥

प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥ २३ ॥

सत्यमिति । यद्वाक्यं सत्यं प्रियं च तद्ब्रूयाद्वदेत् यत्सत्यमस्ति चेदप्रियं तन्न ब्रूयात् यत्प्रियमस्ति चेदनृतमसत्यं तदपि न ब्रूयादिति योजना ॥ २३ ॥

जो वाक्य सत्य है तथा दूसरेकों प्याराबी लगे है तिस वाक्यको बोले और जो वाक्य सत्य तो है परंतु प्रिय नहीं है तिसको नहीं बोलें तथा जो वाक्य दूसरेकों प्रिय तो लगे है परंतु असत्य है तिसकोंबी नहीं बोलें यह सनातनधर्म है इति ॥ २३ ॥

दृष्टिपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम् ॥
सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत् ॥ २४ ॥

दृष्टिपूतमिति । मनो यत्कर्मशुद्धं मन्येत्तं मनःपूतं कर्म समाचरेत्कुर्यादिति ॥ २४ ॥

दृष्टि करके शुद्धमार्गमें पाद धरे अर्थात् नीचे पृथिवीमें देख२के पाद-धरे जिससें जीव नहीं मरें तथा वस्त्रकरके छनेहुए शुद्ध जलकों पान करे सत्य बोलनेसेंही वाणीकी शुद्धि होय है तातें सत्यकरके शुद्धवाणी-कों बोले मन जिस कर्मकों श्रेष्ठमाने तिस कर्मकों करे । प्रश्न । चोर जार बी अपने कर्मकों मनसें विचारकेही करेहैं किंतु कर्म तिनका अशुद्ध है तातें मन करके विचारा हुआ कर्म शुद्ध नहीं है । उत्तर । चोर जार-बी अपने कर्मकों मन करके अशुभ जानते हुए बी प्रमाद करके पुनः तिसी कर्मको करे हैं क्योंकि तिनोंने चोरीकनारीका दंड अनेक वार भुक्त देखा है इति ॥ २४ ॥

अपिचः ।

नामगोत्रादिचरणं देशं वासं श्रुतं कुलम् ॥
वयो वृत्तं बलं शीलं ख्यापयेन्नैव सद्यतिः ॥ २५ ॥

नामगोत्रादिचरणमिति । वयआयुर्न ख्यापयेन्न प्रकाशयेदिति ॥ २५ ॥

आपना नाम तथा गोत्र श्रेष्ठाचार देश निवासस्थान शास्त्रका श्रवण अपना कुल आयु जीविका बल शील इन सर्वकों श्रेष्ठसंन्यासी दूसरेके पूछे विना प्रकट नहीं करे इति ॥ २५ ॥

भारते ।

अब्रुवन्कस्यचिन्निंदामात्मपूजामवर्णयन् ॥
विपश्चिद्गुणसंपन्नः प्राप्नोति सुमहद्यशः ॥ २६ ॥

अब्रुवन्निति । स्वगुणाकथने फलमाह अन्यदेशे जातां पूजामन्यदेशे गत्वाऽवर्णयन् विपश्चित् निंदादौ दोषं जानन्निति ॥ २६ ॥

अब अपने गुणोंके अकथनमें फल कहिते हैं । दूसरेकी निंदाकों नहीं करता हूआ तथा इतर देशोंमें भक्तों करके करी हुई पूजाकों इतर देशोंमें जाकर नहीं कथन करता हूआ परनिंदा आदिकोंमें दोषकों जानता हूआ तथा शमदमादिक गुणों करके संपन्न हूआ महान् यशको प्राप्त होय है इति ॥ २६ ॥

मनुः ।

अभिपूजितलाभांस्तु जुगुप्सेतैव सर्वशः ॥
अभिपूजितलाभैश्च यतिर्मुक्तोऽपि बध्यते ॥ २७ ॥

अभिपूजितलाभानिति । स्वपूजाया वर्णनं त्वेकतस्तिष्ठतु किंतु मनस्यपि तां न पूजेदित्याह जुगुप्सेत निंदयेत् मुक्तोऽपि मुक्तिमार्गं गतोऽपि ॥ २७ ॥

अपनी पूजाका कहिना तो एकतरफ रहा किंतु तिसकों मनमें भी उत्तम नहीं जाने अब यह कहिते हैं । सर्व प्रकारसें अपनी पूजासत्कारकों तथा धनादिकोंके लाभकों सर्वदाही निंदे अर्थात् तिनकों अंगीकार नहीं करे

क्योंकि पूजा तथा धनादि लाभों करके संन्यासी मोक्षमार्गमें प्राप्त हूआ भी बंधायमान होय है इति ॥ २७ ॥

क्रतुः ।

बीजभ्रं तैजसं पात्रं शुक्रोत्सर्गं सितांबरम् ॥
निशान्नं च दिवा स्वप्नं यतीनां पतनानि षट्॥२८॥

बीजभ्रमिति । अन्यान्यपि षड्वस्तूनि यतिना त्याज्यानीत्याह बीजभ्रं धान्यभर्जनं तैजसं ताम्रादिधातुपात्रं दिवास्वप्नं दिवसे शयनं शुक्रोत्सर्गं वीर्यपरित्यागः सितांबरं शुक्लवस्त्रं पतनानि पतनहेतवः पापानि ॥ २८ ॥

षट् वस्तु और भी संन्यासीकों त्यागनेयोग्य हैं अब यह कहिते हैं । अन्नका भूनना पीतलआदिक धातुका पात्र वीर्यका त्याग सुपेदवस्त्र रात्रिभोजन दिने शयन यह षट् संन्यासीयोंके नरक पडनेके हेतु पाप हैं इति ॥ २८ ॥

वाक्यसंग्रहे ।

आसनशयने भूमौ खट्वायां न कदाचन ॥
कुर्याद्यतिरिति प्रोक्तमरुण्युपनिषद्यपि ॥ २९ ॥

दिवास्वप्नं तु वर्जितं किंच रात्रावपि भूमौ शयीत न च खट्वायामित्याह आसनशयन इति। रज्जुबद्धमंचे काष्ठमयमंचे नैव दोष इति भावः ॥ २९ ॥

दिनमें शयन करना तो पूर्व निषेध करा है परंतु रात्रिमें भी पृथिवीमें शयन करे खाटमें नहीं करे अब यह कहिते हैं । बैठना शयनकरना संन्यासी पृथिवीमें करे खाटमें कभी नहीं करे यह आरुणीउपनिषद्में कहा है इति ॥ २९ ॥

व्यासः ।

द्वाविमौ न विराजेते विपरीतेन कर्मणा ॥
निरारंभो गृहस्थश्च कार्यवांश्चैव भिक्षुकः ॥ ३० ॥

द्वाविमाविति । विपरीतकर्माह निरारंभः कृषिवाणिज्यादित्यागी कार्यवान् मठादिव्यापारवान् नैव राजेते नैव शोभेते ॥ ३० ॥

दो यह पुरुष उलटे कर्मके करनेसें शोभा नहीं पाते एकतौं गृहस्थ होकर खेती वणज आदिक नहीं कर्ता दूसरा संन्यासी होकर मकान बनाना आदिक व्यवहार करनेवाला इति ॥ ३० ॥

जमदग्निः ।

धान्यं वृक्षं लतां यस्तु स्थावरं जंगमं तथा ॥
उत्पाटयति मूढात्मा अवीचिनरकं व्रजेत् ॥ ३१ ॥

विपरीतकर्माचरणे दोषमाह धान्यमिति।यो यतिरेतानुत्पाटयति विनाशयति स मूढात्मा अवीचिनामनरकं व्रजेत् प्राप्नुयात् ॥ ३१ ॥

अब उलटे कर्मके करनेमें दोष कहिते हैं । अन्न वृक्ष वेलादिक स्थावर जीवोंकों श्वानादिक जंगम जीवोंको जो सन्यासी हनन करे है सो मूर्ख अवीचिनाम नरककों प्राप्त होय है इति ॥ ३१ ॥

जाबालः ।

अजिह्वः पंडकः पंगुरंधो बधिर एव च ॥
मुग्धश्च मुच्यते भिक्षुः षड्भिरेतैर्न संशयः ॥ ३२ ॥

यतो विपरीताचरणे नरकोऽतो मोक्षहेतूनयतः स्वकीयधर्माचरणमाह अजिह्व इति । पंडकः क्लीबः मुग्धो मूर्ख इति

अब कर्तव्यरूप धर्मोंको कहिते है । जिह्वासें रहित नपुंसक लंगडा अंधा

वधिरा मूर्ख इन षड्लक्षणों करके संन्यासी मुक्तिको प्राप्त होय है इसमें कछू संशय नहीं इनका अर्थ नीचे षट् श्लोकों करके कथन करेंगे ॥ ३२ ॥

इदमिष्टमिदं नेति योऽश्नन्नपि न सज्जते ॥
हितं मितं प्रियं वक्ति तमजिह्वं प्रचक्षते ॥ ३३ ॥

अजिह्वादिषट्कं किंलक्षणमित्याकांक्षायां स्वयमेव तल्लक्षणमाह इदमिष्टमिति । पङ्क्तिः यो यतिरन्नमश्नन्निदमिष्टमिदं न इदमन्नं प्रियमिदमप्रियमिति न सज्जते न वदति च श्रोतुर्हितं मितं मर्यादात् प्रियं वाक्यं वक्ति तं यतिं शास्त्रमजिह्वं प्रचक्षते निगदते ॥ ३३ ॥

यह भोजन प्रियलगे है यह नहीं प्रियलगे है भोजन कर्ता हुआ इस प्रकार जो संन्यासी नहीं कहिता तथा दूसरेके हितका मर्यादाका सबको प्रिय वचन बोले है तिसको जिह्वासें रहित कहिते हैं ॥ ३३ ॥

अद्य जातां यथा नारीं तथा षोडशवार्षिकीम् ॥
शतवर्षां च यो दृष्ट्वा निर्विकारः स पंढकः॥ ३४ ॥

अद्य जातामिति । यथाऽद्य जातां कन्यां शतवर्षां नारीं च दृष्ट्वा नरो न मुह्यते तथा षोडशवर्षप्रमितां नारीं दृष्ट्वा यो यतिर्निर्विकारोऽकामातुरः स पंढक उच्यते इत्यग्रेण संबंधः ॥ ३४ ॥

जैसे एक दिनकी उत्पन्न हुई कन्याकों तथा शतवर्षकी वृद्धस्त्रीकों देखके कोई कामातुर नहीं होता तैसे सोडष वर्षकी युवान स्त्रीकों देखके भी संन्यासी कामातुर नहीं होय है सो नपुंसक कहाजाता है इति ॥ ३४ ॥

भिक्षार्थमटनं यस्य विण्मूत्रकरणाय च ॥
योजनान्नपरं याति सर्वथा पंगुरेव सः॥ ३५ ॥

भिक्षार्थमिति । यात्रायामेकदिवसे योजनाच्चतुःक्रोशात्परमधिकं न याति यः सः पंगुः ॥ ३५ ॥

जिस संन्यासीका भिक्षाके वास्ते तथा मलमूत्रके त्याग वास्ते चलना होय है तथा तीर्थयात्रामें चारकोससें अधिक एकदिनमें नहीं चलैहै सो सर्व प्रकारसें लंगडा है इति ॥ ३५ ॥

तिष्ठतो व्रजतो वापि यस्य चक्षुर्न दूरगम् ॥
चतुर्युगं भुवं त्यक्त्वा परिव्राट् सोऽध उच्यते॥३६॥

तिष्ठत इति।चतुर्युगं षोडशहस्तपरिमाणां भूमिं त्यक्त्वा यस्य यतेश्चक्षुर्न दूरगामी भवति स परिव्राट् यतिरंध इति युगं हस्तचतुष्टयमित्यमरकोशात् ॥ ३६ ॥

बैठे हुए चलते हुए जिस संन्यासीके नेत्र सोलय १६ हस्त परिमाण पृथिवीको त्यागके दूर नहीं जाते सो संन्यासी अंधा कथन करा है॥३६॥

हितं मितं मनोहारि वचः शोकावहं च यत् ॥
श्रुत्वापि न शृणोति यो बधिरः सः प्रकीर्तितः॥३७॥

हितमिति । शोकावहं शोकप्रदं न शृणोति हर्षशोकौ न करोति ॥ ३७ ॥

अपने हितके मर्यादावाले वचनकों तथा मनोहर वचनकों तथा शोकके प्राप्तकरनेवाले वचनकों श्रवण करके भी जो संन्यासी नहीं श्रवण कर्ता अर्थात् हर्ष शोक नहीं करे है सो बधिरा कथन करा है इति ॥ ३७ ॥

सान्निध्ये विषयाणां च समर्थोऽविकलेंद्रियः ॥
सुप्तवद्वर्तते नित्यं स भिक्षुर्मुग्ध उच्यते ॥ ३८ ॥

सान्निध्य इति। प्रमदादिविषयाणां सान्निध्ये इन्द्रियगोचरे सति यो यतिरविकलेंद्रियः सम्पन्ननेत्रादीन्द्रियः सन्

तेषां भोक्तुं समर्थोपि सुप्तवद्वर्त्तते समाहितचेता भवति स मुग्धो विषयज्ञाने मूर्ख इति ॥ ३८ ॥

स्त्रीआदिक विषयोंके समीप-प्राप्त हुए बी तथा भोगनेकों समर्थबी हुए तथा नेत्रादिक सर्व इंद्रियों करके संयुक्तबी हुए जो संन्यासी सुप्त पुरुषकी न्यांई वर्त्तता है अर्थात् विषयोंके तरफ मन नहीं चलाता सो मुग्ध अर्थात् मूर्ख कथन करानाता है इति ॥ ३८ ॥

रथ्यायां बहुवस्त्राणि भिक्षा सर्वत्र लभ्यते ॥
भूमिशय्या सुविस्तीर्णा यतयः केन दुःखिताः॥३९॥

नन्वेवंवृत्तौ देहनिर्वाहोपि दुर्घट इत्याशंक्याह रथ्यायामिति । सर्वत्र सकलदेशग्रामेषु रथ्यायां वीथ्यामिति ॥ ३९ ॥

प्रश्न-इस प्रकारकी वृत्तिमें तौ शरीरका निर्वाहबी कठन है । उत्तर । इसमें क्या दुःख है देखो गलीयोंमें बहुत वस्त्रोंके टूक गोदडीके वास्ते मिले हैं तथा भिक्षाबी सर्वदेशोंमें ग्रामोंमें मिले है और पृथिवीरूपी शय्या बहुत ऊंची चौडी मिले है तौ संन्यासी किस करके दुःखी होते हैं। तात्पर्य यह है कि भोजनाच्छादनादिक मिलते हुए व्यर्थही अपनेकों दुःखी माने हैं इति ॥ ३९ ॥

भागवते ।

अतः कविर्नामसु यावदर्थः स्यादप्रमत्तो व्यवसायबुद्धिः ॥
सिद्धेऽन्यथार्थे न यतेत तत्र परिश्रमं तत्र समीक्षमाणः॥४०॥

तथैव शुकवचनमाह अतः कविरिति । कविः प्रवृत्तौ दुःखं जानन् नामसु नाममात्रेषु भोग्येषु यावदर्थो देहनिर्वाहो यस्य तथा भूतः स्यात् अप्रमत्तस्तावन्मात्रेष्वनासक्तः व्यवसायबुद्धिर्नेदं सुखमिति निश्चयवान् तदापि

तत्र तस्मिन्नर्थेऽन्यथैव सिद्धे सति तत्र यत्ने परिश्रमं पश्यन्न यतेत ॥ ४० ॥

तिसी प्रकार शुकदेवजीनें बी कहा है जिससें भोगोंका 'भोगना दुःख-का हेतु है तिससें बुद्धिमान् पुरुष नाममात्र संसारके भोगोंमें देहके निर्वाह मात्र भोजनाच्छादनकों ग्रहणकरे किंतु तितने मात्रमेंबी आसक्ति नहीं करे तथा भोगोंकों सुखरूप नहीं जाने सो बी यदि भोजनाच्छादन विनाही यत्नसें प्राप्त होंय तौ तिनके उद्यममें दुःख देखता हुआ तिनके वास्ते यत्न नहीं करे इति ॥ ४० ॥

सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासै-
र्बाहौ स्वसिद्धे ह्युपबर्हणैः किम् ॥
सत्यंजलौ किं पुरुधान्नपात्र्या
दिग्वल्कलादौ सति किंदुकूलैः ॥ ४१ ॥

अन्यथा सिद्धिमाह सत्यामिति । द्वाभ्यां क्षितौ पृथिव्यां कशिपोः शय्यायाः उपबर्हणैरुच्छीर्षकैः पुरुधा बहुप्रकार-यान्नपात्र्या भोजनपात्रेणेति ॥ ४१ ॥

अब निर्यत्न देहके व्यवहारकी सिद्धिको दो श्लोकों करके कहिते हैं। यदि पृथिवी शयन करनेकों है तौ शय्याके वास्ते प्रयत्नों करके क्या है। यदि भुजा दोनों हैं तौ तकीयों करके क्या है यदि दोनो हस्त हैं तौ बहुत प्रकारके अन्नके पात्रों करके क्या है; यदि दिशा वा वल्कलादिक हैं तौ रेशमी दुबटियों करके क्या है इति ॥ ४१ ॥

चीराणि किं पथि न संति दिशंति भिक्षां
नैवांघ्रिपाः परभृतः सरितोऽप्यशुष्यन् ॥
रुद्धा गुहा किमजितोऽवति नोपसन्नान्
कस्माद्भजंति कवयो धनदुर्मदांधान् ॥ ४२ ॥

ननु दिक्सद्भावो नाम नग्नत्वमेव भोजनाच्छादनस्थानानि तु याच्ञाप्रयत्नं विना कथं प्राप्येतेत्याशंक्यातिक्रोशयन्नाह चीराणीति। चीराणि वस्त्रखंडानि अंघ्रिपा वृक्षाः परान्बिभ्रति पुष्णंति फलादिभिर्ये ते परभृतो गुहा गिरिदर्यः। ननु कदाचिदेषामलाभे किं कार्यं तत्राह अजितो हरिरुपसन्नान् शरणागतान्किन्नावति नैव रक्षति अपि तु रक्षत्येव तदुक्तं पांडवगीतायाम्। भोजनाच्छादने चिन्तां वृथा कुर्वंति वैष्णवाः॥ योऽसौ विश्वंभरो देवः स भक्तान्किमुपेक्षत इति॥ धनेन ये दुर्मदस्तेनाधान्नष्टविवेकानिति ॥ ४२ ॥

प्रश्न। दिगंबर नाम तो केवल नग्नका है और भोजनाच्छादनस्थान तो याचना प्रयत्न विना कैसे प्राप्त होय। उत्तर। याचना प्रयत्नसें विना बी मिले हैं अब यह कहिते हैं। गलीयोंमें वस्त्रोंके टूक गोदडीके वास्ते क्या नहीं मिले हैं तथा इतर जीवोंकी पालना वास्ते जन्म है जिनका ते वृक्ष फलरूप भिक्षाको क्या नहीं देते? तथा नदीयां क्या सूक गई हैं जो जल नहीं मिलता? निवासके वास्ते गुफा क्या रुक गई है। प्रश्न। कभी यहबी नहीं मिलें तो क्या करना। उत्तर। परमेश्वर क्या शरणागतोंकी नहीं रक्षा करते जिससें ऐसी चिंता करते हो अर्थात् रक्षा तो करें है तैसे पांडवगीतामें बी कहा है। भगवत्की शरण जो माहात्मा है ते भोजन वस्त्रकी वृथाही चिंता करते हैं क्योंकि जो विश्वकी पालना करनेवाला परमेश्वर है सो क्या भक्तोंकी उपेक्षा करे है किंतु नहीं करे है॥ तातें धन करके जो दुर्मदहै तिस करके नष्ट होगया हैं विचार जिनका तिन धनीपुरुषोंकी दीनता विद्वान् क्यों करते हैं? तात्पर्य यह कि परमेश्वरकी शरण होकर पुनः धनीयोंके आगे दीनता करनीयोग्य नहीं है इति॥ ४२ ॥

अत्रिः।

पिता माता स्वसा भ्राता स्नुषा जाया सुतस्तथा॥
ज्ञातिर्बंधुसुहृद्वर्गो दुहिता तत्सुतादयः॥ ४३ ॥

अथ निवासनियममाह पिता मातेति । स्वसा भगिनी स्नुषा पुत्रभार्या जाया स्वस्त्री सुहृद्वर्गो मित्रसंघः दुहिता कन्या तत्सुताः कन्यात्मजा आदिशब्देन श्वशुरादीनां ग्रहणम् ॥ ४३ ॥

अब निवासका नियम कहिते हैं, पिता माता भगिनी भ्राता पुत्रकी स्त्री अपनी स्त्री पुत्र और इतर जातिके लोक बांधव मित्रसमुदाय कन्या भानजे इति ॥ ४३ ॥

यस्मिन्देशे वसंत्येते न तत्र दिवसं वसेत् ॥
द्वेषः शोको भवेत्तत्र रागहर्षादयो मलाः ॥ ४४ ॥

यस्मिन्निति एते निरंतरोक्ताः पित्रादयः दिवसं दिवसमात्रमपि न वसेत्तत्र हेतुमाह द्वेष इत्यर्द्धेन। हर्षः प्रमदः॥४४॥

ऊपरके श्लोकमें कथन करे पिता आदिक जिस देशमें निवास करते हैं तिस देशमें एक दिनमात्रबी निवास नहीं करे क्योंकि तिनके पास निवास करेसे तिनके शत्रुमें द्वेष तिनकी हानीमें शोक तथा तिनमें प्रीति तिनके सुखमें मद इत्यादिक विकार उत्पन्न होते हैं इति ॥ ४४ ॥

न चैकस्मिन्वसेद्ग्रामे न चैकस्मिन्सरित्तटे ॥
न रात्रौ न च मध्याह्ने संध्ययोर्नैव पर्यटेत् ॥ ४५ ॥

अन्यदेशेपि सदैवैकत्र न वसेदित्याह न चैकस्मिन्निति । सरित्तटे नदीतीरे।गमनेपि नियममाह न रात्राविति॥४५॥

अन्यदेशोंमेंबी सदा एक जगा निवास नहीं करे अब यह कहिते हैं । एक ग्राममें एक नदीके किनारे सदा निवास नहीं करे अब।चलनेमें नियम कहिते हैं रात्रिमें मध्यान्हमें दोनों संध्यामें गमन नहीं करे इति ॥४५॥

एकवासा अवासा वा एकदृष्टिरलोलुपः ॥
एक एव चरेन्नित्यं वर्षास्वेकत्र संवसेत् ॥ ४६ ॥

एकवासा इति । अवासा दिगंबरः एकदृष्टिरेकात्मबुद्धिः अलोलुपोऽचंचलः ॥ ४६ ॥

एक वस्त्रको धारण कर्ता हूआ वा नग्न हूआ एकात्मदृष्टिवाला हूआ चंचलतासें रहित हूआ संन्यासी नित्यही एकला विचरे परंतु वर्षाकालमें एकजगे निवास करे इति ॥ ४६ ॥

जले जीवाः स्थले जीवा आकाशे जीवमालिनी ॥
जीवमालाकुले लोके वर्षास्वेकत्र संवसेत् ॥ ४७ ॥

तत्र हेतुमाह जले जीवा इति । जीवमाला जीवसंघस्तेनाकुले पूर्णे लोके सति ॥ ४७ ॥

एक स्थानके निवासमें हेतु कहिते हैं । जिससें वर्षाकालमें जलमें बी जीव हैं पृथिवीमेंबी जीव हैं ताते अनंत जीवोंके समुदाय करके आकाश तथा पृथिवी लोकके पूर्ण हूए वर्षाकालमें एकस्थानमें निवास करे इति ॥ ४७ ॥

यावद्वर्षत्यकालेऽपि यावत् क्लिन्ना च मेदिनी ॥
तावन्न विचरेद्भिक्षुः स्वधर्ममनुपालयन् ॥ ४८ ॥

यावदिति । अकाले श्रावणादितरकार्तिकादिष्वपि क्लिन्ना आर्द्रा मेदिनी पृथ्वी स्वाऽहिंसाधर्ममनुपालयन् रक्षयन्निति ॥ ४८ ॥

श्रावणसें विनावी कार्तिकादिकोंमेंबी जबतक मेघ वर्षे हैं तथा मेघके निवृत्त हूएवी जबतक पृथिवी गीली है तबतक संन्यासी अपने अहिंसाधर्मकी रक्षा कर्त्ता हूआ नही विचरे इति ॥ ४८ ॥

अत्रिः ।

वर्षाभेदं यतिः कुर्याद्यदि कश्चिदनापदि ॥
प्राजापत्येन कृच्छ्रेण मुच्यते नात्र संशयः ॥४९ ॥

तत्र गमने दोषमाह वर्षाभेदमिति । वर्षाभेदं वर्षायां गमनं प्राजापत्यकृच्छ्रो द्वादशदिनसाध्यस्तल्लक्षणं तु धर्मसिंधावुक्तं तथाहि-प्रथमदिवसे मध्याह्ने हविष्यस्यैकभक्तस्य षड्विंशतिर्ग्रासा भोक्तव्याः द्वितीयेऽहनि नक्तं द्वाविंशतिर्ग्रासाः तृतीयेऽयाचितस्य चतुर्विंशतिर्ग्रासाः चतुर्थेऽहनि निरशनम् । अयं पादकृच्छ्रः कथंचित्त्रिगुणीकृतोयं प्राजापत्यकृच्छ्र इति ॥ ४९ ॥

अब वर्षामें चलनेका दोष कहिते हैं । आपदासें विना यदि जो कोई संन्यासी वर्षामें मार्ग चले है तौ प्राजापत्यकृच्छ्र नामव्रतके करनेसें तिस पापसें छूटे है इसमें कछू संशय नहीं करना क्योंकि हिंसासमान और कोई पाप नहीं है ॥ इसव्रतका लक्षण धर्मसिंधुमें कहा है सो यह व्रत द्वादश दिनका है प्रथम दिनके मध्याह्नमें चामलादिक किसी एक अन्नके छवीस ग्रास खाने दूसरे दिनकी रात्रिमें बाईस२२ ग्रास खानें तीसरे दिनमें विनायाचनासें किसी दूसरे करके दीये हूए अन्नके चौवीस २४ ग्रास खाने चतुर्थ दिनमें निराहार रहिना इसका नाम पादकृच्छ्र है इसकों किसी प्रकारसें तीनगुणाकरे हूए प्राजापत्यकृच्छ्र होय है इति ॥ ४९ ॥

स्थितियोग्यान्बहून् ग्रामान्यदि वर्षासु लंघयेत् ॥
प्रत्येकेकं चरेत्कृच्छ्रमेतत्पापप्रमुक्तये ॥ ५० ॥

स्थितियोग्यानिति । गमने कृते सति यदि मार्गे वर्षेत् तत्र स्थितियोग्यान्बहून् ग्रामाँछ्ल्वापि तानुलंघयेत्तदा प्रत्येकैकं ग्रामं ग्रामं प्रति प्राजापत्यकृच्छ्रं चरेत्कुर्यादिति ॥५०॥

मार्ग चलते हूए यदि मेघ वर्षने लगे तौ जब कोई ग्रामआजाय तबीही तिसमें ठहिरजाय यदि मार्गमें स्थितियोग्य बहुते ग्रामोंकों प्राप्त होकरकेबी तिनकों उलंघन करे है तब इस पापकी निवृत्ति वास्ते जेते ग्राम उलंघन करेथे तेते प्रजापत्यकृच्छ्र करे इति ॥ ५० ॥

वृद्धयाज्ञवल्क्यः ।

चौरैरुपद्रुतं देशं दुर्भिक्षव्याधिपीडितम् ॥
चक्रेणान्येन वा क्रांतं वर्षास्वप्याशु संत्यजेत् ॥ ५१ ॥

यद्यन्नादिभिर्मनोनुकूलं ग्रामं न लभेत्तदा वर्षायामपि गमने नैव दोष इत्याह चौरैरिति द्वाभ्याम् चक्रेणान्येन अन्यराज्ञः सेनया क्रांतं वशीकृतमिति ॥ ५१ ॥

यदि अन्नादिकों करके अनुकूल ग्राम नहीं मिले तो वर्षामेंभी चलनेका दोष नहीं है दो श्लोकों करके अब यह कहिते हैं । जिस देशमें चोर बहुत होंय वा अन्नकी तेजी वा रोगादिकों करके जो देश दुःखी होय अथवा जो देश दूसरे राजाकी सेना करके वश करा हुआ होय ऐसे देशकों वर्षामेंभी त्याग देय ॥ ५१ ॥

मुहूर्तमपि नासीत देशे सोपद्रवे यतिः ॥
उपद्रुते तु मनसि समाधिर्नोपजायते ॥ ५२ ॥

मुहूर्तमिति । नासीत नैव तिष्ठेत् । तत्र हेतुमाह उपद्रुते विक्षिप्ते समाधिरीश्वरध्यानवेदांतश्रवणादौ चित्तैकाग्र्यम् ॥ ५२

उपद्रवसंयुक्तदेशमें एक मुहूर्त भी नहीं ठहिरे क्योंकि ऐसे देशमें निवाससें मन स्वस्थ नही होय है और मनके विक्षिप्त हुए ईश्वरध्यान वेदांतश्रवणादिकोंमें चित्तकी एकाग्रता नहीं होय है इति ॥ ५२ ॥

भारते ।

अहिंसा ब्रह्मचर्यं च सत्यमार्जवमेव च ॥
अक्रोधश्चानुसूया च दमो नित्यमपैशुनम् ॥
अष्टस्वेतेषु युक्तः स्याद्व्रतेषु संयतेंद्रियः ॥ ५३ ॥

अथ ध्यानाद्यंतरीयसाधनानामवश्यकर्तव्यतामाह अहिंसेति सार्द्धैकादशभिः । आर्जवमृजुत्वमनसूया परगुणेषु

दोषानारोपणं दम इंद्रियाणां निग्रहः अपैशुनं परस्मै परदोषाणामवर्णनं संयतेंद्रियो वशीकृतेंद्रिय इति ॥ ५३ ॥

अब ध्यानादिक अंतरीय साधनोंकी अवश्य कर्तव्यता साडेग्यारह श्लोकों करके कहिते हैं । हिंसाका त्याग ब्रह्मचर्य सत्यबाणी सुधास्वभाव क्रोधका त्याग परगुणोंमें दोषारोपणका त्याग नित्यही इंद्रियोंका जीतनां परदोषोंका अकथन इन अष्टनियमोंमें संन्यासी अवश्यवर्ति इंद्रिय हुआ जुडे इति ॥ ५३ ॥

पाराशरः ।

ब्रह्मचर्यमहिंसा च सत्यमस्तेयमार्जवम् ॥
वेदांतश्रवणं ध्यानं भिक्षोः कार्याणि नित्यशः॥५४॥

ब्रह्मचर्यमिति । अस्तेयमचौर्यमीश्वरध्यानं चेति ॥५४॥

ब्रह्मचर्यहिंसाका त्याग सत्य बोलना चोरीका त्याग सुधास्वभाव वेदांतका श्रवण भगवत्का ध्यान यह सब संन्यासीकों अवश्यही नित्य करणे योग्य हैं इति ॥ ५४ ॥

ब्रह्मवाक्यम् ।

दश व्रतान्यनुष्ठाय यतिः कल्याणमश्नुते ॥
तेषामेवाननुष्ठानान्नरकं स समश्नुते ॥ ५५ ॥

दशव्रतानीति । व्रतानि वक्ष्यमाणनियमान् अनुष्ठाय कृत्वा समश्नुते भुंक्ते ॥ ५५ ॥

दश नियमोंकों करके संन्यासी मोक्षकों भोगे है और तिन दश नियमोंके न करनेंसें सो नरककों भोगे है इन दश नियमोंका नाम नीचे दो श्लोकों करके कथन करेंगे इति ॥ ५५ ॥

दशव्रतानि सर्वेषां यतीनां विहितानि च ॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहः ॥ ५६ ॥

दशव्रतानीति । तानि दशव्रतानि कानीत्याकांक्षायां तान्याह अहिंसेति सार्द्धेन।अपरिग्रहः असंग्रह इति ॥ ५६ ॥

ते दशव्रत सर्व संन्यासीयोंको विधान करे हैं सो दश नियमोंको डेढ श्लोक करके कहिते हैं। अहिंसा सत्यबोलना, चोरीका त्याग ब्रह्मचर्य संग्रहका त्याग इति ॥ ५६ ॥

अक्रोधो गुरुशुश्रूषा शौचं दुर्भुक्तिवर्जनम् ॥
वाङ्मनःकायचेष्टासु प्रमादस्य च वर्जनम् ॥५७॥

अक्रोध इति। शुश्रूषा सेवा दुर्भुक्तिवर्जनं पलांडुलशुनादीनां परित्याग इति ॥५७॥

क्रोधका त्याग गुरुकी सेवा जल मृत्तिकासे शरीरकी शुद्धि प्याज लशुनादिकोंका परित्याग मनवाणी शरीर करके प्रमादका त्याग इति॥५७॥

देवलः।

स्त्रियं दृष्ट्वा यदा स्वप्ने रेतः क्षरति वै क्वचित् ॥
सवासाः प्लुत्य शुद्ध्यर्थं कुर्यात्षोडशसंयमान्॥५८॥

ननु ब्रह्मचर्यसद्भावो नाम वीर्यास्खलनं तत्तु जाग्रति स्वाधीनमस्तु स्वप्ने तु नैवं तत्र किं कार्यमित्याशंक्य तस्य स्वल्पप्रायश्चित्तेन निष्कृतिर्भवतीत्याह स्त्रियमितिरेतो वीर्यं क्षरति स्रवति सवासाः प्लुत्य सचैलः स्नात्वा संयमान् प्राणायामानिति ॥ ५८ ॥

प्रश्न। ब्रह्मचर्य नाम वीर्यके अपरित्यागका है सो जाग्रत्में तो संन्यासीनें विचारके बलसे रोका परंतु स्वप्नेमें तो इसके वश नहीं है इसमें क्या करना चाहिये। उत्तर। जेता पाप जाग्रत्में वीर्यके त्यागसे होय है तेता स्वप्नमें नहीं इस पापकी निवृत्ति अल्प प्रायश्चित्तसें होय है सो प्रायश्चित्त अब कहिते हैं। स्त्रीको स्वप्नमें देखके यदि कभी वीर्यका-

त्याग हो जाय तौ शुद्धिके वास्ते सहित वस्त्रोंके स्नान करके सोलय १६ माणायाम करे ॥ ५८ ॥

अत्रिः ।

मौनं योगासनं योगस्तितिक्षैकांतशीलता ॥
निःस्पृहत्वं समत्वं च सप्तैतान्येकदंडिनः ॥ ५९ ॥

मौनं व्यर्थालापराहित्यं योगासनं सिद्धादिकं योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः निःस्पृहत्वमिच्छाभाव एकदंडिनो यतेर्धर्मा इति ॥ ५९ ॥

वृथा नहीं बोलना सिद्धादिक योगका आसन चित्तवृत्तियोंका विषयोंसें रोकना शीतोष्ण वा रागद्वेषाधिक द्वंद्वोंका सहारना एकांतनिवासका स्वभाव इच्छाका त्याग सर्वमें समदृष्टि यह सप्तधर्म एकदंडी संन्यासीके हैं इति ॥ ५९ ॥

दक्षः ।

वैणवेन त्रिदंडेन न त्रिदंडीति चोच्यते ॥
अध्यात्मदंडयुक्तो यः स त्रिदंडीति कथ्यते ॥ ६० ॥

वागादित्रिदंडं विना वंशमयत्रिदंडं निरर्थकमित्याह वैणवेनेति । अध्यात्मदंडयुक्तो मनोवाग्देहदंडैर्युक्तस्त्रिदंडी भवति । ननु दंडकाषायमात्रेण नरो नारायणो भवेदिति स्मृतौ दंडः सफल उक्तः कथं निरर्थकः कथ्यत इति न च वाच्यम् । एतत्तु सामान्यवाक्यं । सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान्भवेदिति न्यायात्तेन विशेषेणतद्बाध्यते यथा न हिंस्यात्सर्वभूतानीदं सामान्यवाक्यं वाजपेयेनालभेद्येन विशेषवाक्येन बाध्यते इत्यलम् ॥ ६० ॥

वित्तादिक तीनदंडोंसें विना वांसके तीन दंड वृथा ही हैं अब यह

कहिते हैं । वांसके तीनदंडों करके संन्यासी त्रिदंडी नहीं होय है मन वाणी शरीरका वशकरनारूप तीन दंडो करके जो युक्त है सो त्रिदंडी कथन करा जाता है । प्रश्न । दंड तथा काषायवस्त्रोंके धारणमात्रसें पुरुष नारायणरूप होय है । इस स्मृतिमें दंडकी सफलता कथन करी है और तुम कैसे दंडकी व्यर्थता कहिते हो । उत्तर । यह सामान्यवाक्य है सामान्यवाक्यसें विशेषवाक्य बलवान् होय है यह निश्चय है । इस न्यायप्रमाणसें विशेषरूप तिस वाक्य करके यह तेरा सामान्यवाक्य बाधा करा जाता है । जैसे एक श्रुतिमें कहा है कि किसी जीवकी हिंसा नहीं करे यह सामान्यवाक्य है और दूसरी श्रुतिमें कहा है कि अश्वमेधयज्ञकरके हिंसा करे । इस विशेषवाक्यकरके पूर्वली श्रुति उक्त सामान्यवाक्य बाध हो जाय है इति ॥ ६० ॥

वागादिदंडयुक्तस्तु प्रत्यगात्मन्यवस्थितः ॥
परे ब्रह्मणि लीनो यः स त्रिदंडी व्यवस्थितः॥६१॥

आत्मज्ञानं विनाऽध्यात्मदंडयुक्तोऽपि त्रिदंडी नैव स्यादित्याशयेनाह । प्रत्यगात्मन्यवस्थितः पंचकोशेभ्यो भिन्नात्मज्ञः परोक्षज्ञानीत्यर्थः।परे ब्रह्मणि लीनो ब्रह्मणा सहाभेददर्शी अपरोक्षज्ञानीति यावत ।अयमर्थ इंद्रियसंयमपरोक्षापरोक्षज्ञानरूपत्रिदंडैस्त्रिदंडी भवति ॥ ६१ ॥

आत्मज्ञानसें विना मन वाणी शरीरके वश करेसेभी त्रिदंडी नहीं होय है अब यह कहिते हैं।मन वाणी शरीर जिसके वश हैं तथा पंचकोशोंसें भिन्न करके जो अंतर आत्माकों जाने है तथा परब्रह्मके साथ जिसकों अभेदज्ञान है सो त्रिदंडीरूप करके स्थित है अर्थात् तिसकों त्रिदंडी जानना इति ॥ ६१ ॥

वाग्दंडे मौनमातिष्ठेत्कर्मदंडेऽल्पभोजनम् ॥
मानसे तु कृते दंडे प्राणायामो विधीयते॥ ६

कीदृशं वागादिदंडमित्याकांक्षायां तं स्वयमेव व्याचष्टे वाग्दंड इति । मौनेन वाग्दंडो भवतीत्यर्थः कर्मदंडे देहदंडे ॥ ६२ ॥

अब वागादिकोंके वश करनेका प्रकार कहिते हैं । मौन धारणकरना यह वाणीका दंड है अल्पभोजन करना शरीरका दंड है प्राणायाम करणा मनका दंड है इति ॥ ६२ ॥

आप्तवाक्यम् ।

तितिक्षाज्ञानवैराग्यशमादिगुणवर्जितः ॥
भिक्षामात्रेण यो जीवेत्स पापी पशुवन्नरः ॥६३ ॥

वैराग्यादिना विना वेषोऽतीवदुरितकर इत्याह । तितिक्षा द्वंद्वानां सहनं शमो मनोनिग्रहः । आदिशब्देन दमोपरतिश्रद्धासमाधानमोक्षेच्छा इति ज्ञेयः ॥ ६३ ॥

वैराग्यादिकोंसें विना वेष धारण करणा अत्यंत पापके देनेवाला है अब यह कहिते है शीत उष्णादिक द्वंद्वोंका सहारना तथा आत्मज्ञान वैराग्य मनका विषयोंसे रोकना आदि शब्द करके इंद्रियोंका दमन संसारसें उपरामता गुरुशास्त्रमे श्रद्धा सावधानता मोक्ष इच्छा इत्यादिक और बी भगवद् भजनादिक गुणोंसें जो संन्यासी रहित हुआ भिक्षामात्र करके जीविका करे है अर्थात् एक भिक्षा मांगनाही जिसने संन्यासीका धर्म अंगीकार करा है और वैराग्यादिक सर्व त्याग दीये हैं सो संन्यासी पापी पशुकी न्याई पेट भरू है इति ॥ ६३ ॥

श्रीगुरुरुवाच ।

किं बहूक्तेन भो सौम्य वेदाः शास्त्राणि वै पुनः॥
पुनर्वदंति पौराणास्त्यक्तुरेव हरेः पदम् ॥ ६४॥

अथ श्रीगुरुर्बहुविधमुपदेशं कृत्वाऽन्ते सर्व वेदशास्त्राणां सारभूतार्थमाह किंबहूक्तेनेति । त्यक्तुस्त्यागिनो हरेः पदं

भवतीति पुनःपुनर्वेदादयो वदंति तथा श्रुतिश्च, न धनेन न कर्मणा न प्रजया त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुरिति ॥ ६४ ॥

अथ श्रीगुरुजी बहुत प्रकारके उपदेश करके अंतमें सर्व वेदशास्त्रोंका सारूप अर्थ कहिते हैं। हे शिष्य! क्या है हमारे बहुत कथन करनेसें क्योंकि वारंवार वेद शास्त्र पुराण यहही कहिते हैं कि त्याग करनेवाले-कोंही निश्चयकरके हारिके लोककी वा स्वरूपकी प्राप्ति होय है तैसे श्रुतिमें भी कहा है धन करके श्रेष्ठ कर्मों करके पुत्रों करके पुरुष मोक्षकों नहीं प्राप्त होय है किंतु त्याग करकेही कोईकि महात्मा पुरुष मोक्षकों प्राप्त होते भये हैं इति ॥ ६४ ॥

श्रुतिः।

त्याग एव हि सर्वेषां मोक्षसाधनमुत्तमम् ॥
त्यजतैव हि विज्ञेयं त्यक्तुः प्रत्यक् परं पदम्॥६५॥

स्ववचनदाढर्याय श्रुतिमाह त्याग इति। त्यजता संन्यासिना प्रत्यगंतरात्मा विज्ञेयम् अपरोक्षेण ज्ञातुं योग्यः त्यक्तुस्त्यागिनो परं पदं ब्रह्म भवतीति शेषः ॥ ६५ ॥

अथ श्रीगुरुजी अपने वचनकी दृढताके वास्ते श्रुति कहिते हैं। त्यागही सर्व वर्णाश्रमीयोंकों मोक्षका उत्तम साधन है क्योंकि त्यागकरनेवाले पुरुषकरकेही अंतरात्मा अपरोक्षकरके जानने योग्य है तथा त्यागी-पुरुषकोंही परमपदकी प्राप्ति होय है इति ॥ ६५ ॥

ब्रह्मवाक्यम्।

नात्यक्त्वा सुखमाप्नोति नात्यक्त्वा विंदते परम् ॥
नात्यक्त्वा चाभयं शेते सर्वं त्यक्त्वा सुखी भवेत्॥

अन्वयमुखेनोक्त्वा व्यतिरेकमुखेनाह नात्यक्त्वेति। अत्यक्त्वा मोक्षसुखं जीवन्मुक्तिसुखं नाप्नोति न प्राप्नोति अत्य-

क्त्वा परं परमात्मानं न विंदते न जानाति अत्यक्त्वाऽत्रापि स्वातंत्र्येण न शेते ॥ ६६ ॥

त्यागद्वारा मोक्षकी प्राप्ति कथन करके अब विना त्यागसें मोक्षका अभाव कहिते हैं । न त्याग करके जीवन्मुक्तिके सुखकों नहीं प्राप्त होय है तथा विना त्यागसें परमात्माकोंबी नहीं प्राप्त होय है तथा विना त्यागसें इस लोकमेंबी स्वतंत्रतासें नहीं शयन करे है तातै सर्वकों त्याग करकेही सुखी होय इति ॥ ६६ ॥

ग्रंथकर्तृवाक्यम् ।

येऽद्वैते च वदंति भेदमुदरं विज्ञाननित्यावृता-
स्तेभ्यो यो भयमाददाति विपुलं वेदार्थसंलोपकाः ॥
यो विश्वं विविधं करोति परमश्चैलानि तंतुर्यथा
यः शुद्धो विभुसद्द्विभावरहितः सोहं गुरुर्विश्वतः ॥६७॥

अथ यस्य भगवतः कृपया ग्रंथो निर्विघ्नसंपूर्णतां गतस्तस्य स्वरूपनिर्देशात्मकमंगलमन्ते कुर्वे येऽद्वैत इति ॥ स विश्वतो विश्वस्य गुरुरहं स को यो विपुलमनंतजन्ममरणलक्षणं भयं ददाति केभ्यो येऽद्वैते भेदरहिते ब्रह्मणि उदरमुदपि अरमल्पं भेदमात्मनो वदंति विज्ञानंस्वरूपज्ञानं नित्यं त्रिकालाबाध्यमावृतं येषां तथा च ये वेदार्थसंलोपकास्तेभ्यः॥ श्रुतिश्च, यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमंतरं कुरुतेऽथ तस्य भयं भवति मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यतीति॥वेदार्थलोपस्तु यथा तत्त्वमसीत्यस्याः श्रुतेरभेदार्थं विहाय स्वबुद्ध्या तस्य त्वं दासोऽसि वा तस्मात्त्वं जातोऽसीत्याद्यर्थं कल्पयंति। पुनः कथंभूतो यो विविधं विश्वं करोति। कान् क इव चैलानि पटांस्तन्तुरिव। पुनः कथंभूतः शुद्धो मायातत्कार्यसंबंधरहितश्च विभुर्व्यापकः सन् त्रिकालाबाध्यः द्विभावरहितो द्वितीयवस्तुशून्य इत्यन्वयः ॥ इति ॥ ६७ ॥

अब जिस भगवत्की कृपासें ग्रंथ निर्विघ्न संपूर्ण हूआ है तिसका स्वरूपनिर्देशात्मक मंगलाचरण करता हूं ॥ सो जगत्का गुरु परमात्मा मैंहूं जो अनंत जन्ममरणरूप भयका दाता है । प्रश्न । किनके तांई । उत्तर । जे अद्वैतब्रह्ममें अल्पमात्रभी जीवका भेद कहिते हैं तथा त्रिकाल बाधस्वरूप ज्ञान जिनका अवरा हूआ है तथा वेदके अर्थकों जे लोपकरनेवाले हैं तिनके तांई । तैसें श्रुतिमेंभी कहा है । जब यह पुरुष इस ब्रह्ममें अल्पमात्रभी भेद करे है तब तिसकों भयकी प्राप्ति होय है । मरणसे मरणको सो पुरुष प्राप्त होय है जो इस ब्रह्ममें नाना जीवोंकों देखे है अर्थात् जो जीव ब्रह्मका भेद देखे है । सो वेदका अर्थ भेदवादी इस प्रकार लोप करे है जैसें । तत्त्वमसि । इस श्रुतिका अर्थ यह है कि छांदोग्य उपनिषद्में उद्दालकऋषि श्वेतकेतु अपने पुत्रकों कहिते हैं । हे पुत्र ! जो ब्रह्म सर्वमें व्यापक है सो तूं है अर्थात् ब्रह्मसें तूं भिन्न नहीं है । और इस अर्थकों त्यागके अपने मनसे इस प्रकार अर्थकल्पना करें हैं तिस परमेश्वरका तू दास है वा तिस सें तू उत्पन्न हूआ है इत्यादिक ॥ पुनः सो परमेश्वर कैसा है जो नानाप्रकारके जगत्को उत्पन्न करेहै । प्रश्न । किस प्रकार करेहै ।उत्तर।-जैसे सूत्रकी तारही वस्त्ररूप है तैसे आपही ब्रह्म सर्वरूप होय है । पुनः कैसा है सो ब्रह्म जो माया तथा तिसके कार्य जगत्के संबंधसें रहित है तथा व्यापक है एक अद्वैत है तीन कालके नाशसें रहित है इति ॥ ६७ ॥

बालकृत्यं समालोक्य क्षम्यतां शास्त्रवित्तमैः ॥
शिशुवाक्यं समाकर्ण्य शंसतः पितरौ यथा ॥ ६८ ॥

बालकृत्यमिति ।अथ सज्जनेभ्य इयं प्रार्थना मां स्वबालवज्ज्ञात्वा मदीयप्रमादाद्यदत्र स्खलितं स्यात्तत् क्षमया पूरणीयमक्षरार्थस्तु स्पष्ट इति ॥ ६८ ॥

अब विद्वान् महात्मोंसें यह प्रार्थना है कि जिस प्रकार छोटे बालकके अस्तव्यस्त वचन श्रवण करके माता पिता प्रसन्न होते है तथा ति-

सके वचनकोंभी सुधार लेते हैं जैसे बालकने पापा मांगा तिसका अर्थ जल जान लेते हैं इसी प्रकार विद्वान् महात्मोंनैं मेरेकों अपने बालकके सदृश जानके मेरे शुद्ध अशुद्ध शब्दको देखके क्षमा करनी तथा तिस अशुद्ध शब्दकों सुधार लेना क्योंकि मैंने कछू वियाके बलसे ग्रंथका संग्रह नहीं करा किंतु केवल एक निवृत्तिके उत्साहसें करा है इति॥६८॥

कृतो गोपालदासेन मुन्यब्ध्यंकेंदु १९४७ वत्सरे ॥
अमायां मधुपुर्यां च चंद्रवासर आश्विने ॥ ६९ ॥
इति श्रीवैराग्यभास्करे संन्यासधर्मेषु शमदमादि-
वर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ८ ॥

कृत इति । अंकानां वामतो गतेरेकोनविंशतिशत-सप्तचत्वारिंशत्तमे संवत्सरे अमायाममावस्यायां समाप्त इति ॥ ६९ ॥

इति श्रीवैराग्यभास्करसंस्कृतव्याख्याया-
मष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ८ ॥

अब इस ग्रंथका कर्ता तथा समाप्तिका काल स्थान कहिते हैं। गोपालदास नाम उदासीन साधुनें यह ग्रंथ करा है; श्रीमथुरापुरीमें आश्विनमासकी सोमवारी अमावास्याके दिन संवत् १९४७ में संपूर्ण हूआ। इस श्लोकके दूसरे पादमें मुनिशब्द करके सप्तका अंक जानना अब्धिशब्दसें चारका अंक जानना अंकशब्दसे नवका अंक इंदुशब्दसें एकका अंक जानना। इन अंकोंको उलटा करनेसें पूर्वोक्त संवत्की संख्या होय है इति ॥ ६९ ॥

इति श्रीवैराग्यभास्करभाषाटीकायाम-
ष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसोदासीनशिरोवतंसश्रीस्वामि-
ज्ञानदासशिष्यगोपालदासाख्येन विरचितो
वैराग्यभास्कराख्यग्रंथः समाप्तः ॥
शुभम्भूयात् ॥

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ श्रीकृष्णदत्तवराष्टकम् ।



मुनींद्राणां चेतोविषयममलं कंजनयनं
दयासिंधुं शौरिं स्वमनसि निधायामरतरुम् ॥
यदाम्यादौ बुद्धेरभिलषितमेनं मधुपुरी-
निवासी कृष्णाख्या रुचिदमिह नामैकशरणः ॥ १॥
श्रीनंदात्मज भक्तवत्सल हरे मे प्रार्थनां त्वं शृणु
ब्रह्मांडानि सुखानि मे प्रतिदिनं यावंति लोमेषु ते ॥
हे कृष्णेति वदंतु ताः प्रतिमुखं तावंति जिह्वा मम
स्युर्मे दानमिदं हि देहि स तदा कृष्णस्तथाऽस्तूक्तवान् ॥२
अन्यां त्वं शृणु कीर्तिवज्जनगते श्रुत्वा च पूर्णं कुरु
भक्तानां त्वयि यावती तव विभो त्रैकालिकानां रुचिः ॥
नाम्नो वै युवयोः सदा भवतु मे गाने रुचिस्तावती
त्वत्तोऽन्यत्र मनः प्रयातु न तदा कृष्णस्तथाऽस्तूक्तवान् ३
नीरौघाः प्रलये यथा यदुपते वर्द्धन्ति कृष्णामिताः ।
प्रीतिर्वर्द्धतु मे मुकुन्द भवतः श्रीनामाभिधाने तथा ॥
उत्साहो हृदि नाम ते यदि भवेद्धायंतु रोमाणि मे ।
मार्गे चासनगो जपान्यहरहः कृष्णस्तथा स्तूक्तवान् ॥४॥
अन्याऽप्यस्त्यभिशंसितका च भगवन् प्राणे गते कायतः ।
कृष्णेति प्रसभं त्वतीव जपतु प्राणैर्विहीनस्तनुः ॥
भिन्ना लोमगणाः कदाचिदपि ते कायंतु कृष्णं शवा
द्ब्रह्मांडेषु गताश्च येषु सह तैः कृष्णस्तथाऽस्तूक्तवान्॥ ५ ॥
हे गोविंद ममाभिलाषकमिमं देवप्रभो पूरय ।

---

१ कृष्णम् । २ प्रार्थना । ३ गायंतु ।

स्थास्नूनां भुवनेषु संति विजने यावंति बीजानि च ॥
अन्नादे प्रति ते जपानि कवलं तावंति नामान्यहं . .
गच्छाम्यध्वनि यत्र साध्वगनृभिः कृष्णस्तथाऽस्तूक्तवान्॥
यात्रा मेऽस्ति तथैव निर्जरपते दामोदराधोक्षज
यत्राहं च यदा स्वपानि वरद त्वं तत्र मेर्थं जप ॥
श्रीराधा त्वयि तज्जपेच्छ्रमयुते मातेव हर्षंकरी
मेऽखंडः सुजपो भवेदिति तदा कृष्णस्तथाऽस्तूक्तवान्॥७॥
अन्यां कृष्ण शृणुष्व दुर्घटकरीं मायापते मेऽर्थनाम् ।
ते नामानि जपेयमेव भुवने यावंति भांनि क्षणे ॥
ते नामस्मरणं कृतं सुमतिभिर्यावत्करिष्यंति ये
मत्पुच्छासमथो स्मरानि तदहं कृष्णस्तथाऽस्तूक्तवान् ॥८॥
विष्वक्सेन विधो शृणुष्व चरमं शौरे गुरो लालसं
कांक्षेऽस्तव नाम वारिधिझषत्रैलोक्यमोक्षं यदा ॥
कार्यं नैव विलंबनं च भवता तस्माद्भहूंस्तारय
तस्यांते सह राधया निवसतात् कृष्णस्तथाऽस्तूक्तवान्९॥

इति श्रीमदुदासीनपरमहंसज्ञानदासाख्येन
विरचितं श्रीकृष्णदत्तवराष्टकं संपूर्णम् ॥ १ ॥

नाममाहात्म्याष्टकम् ॥ २ ॥

कथं बन्धनाशो भवेदाशु देव त्वदीयांघ्रिमूले गतोहं वराकः॥
सुरोवानरो वायदा जन्मपात्र ततः किंततः किंततः किंनुदुखम्
तनोः क्लेशभाजो विचित्रस्य हेतुः कुमोहांबरं हि श्रुतेः शा॰
स्त्रवाक्यात् ॥ सदैवावृतोहं पटेनैव तेन ततः किं॰ ॥ २ ॥
हरेर्नामभुक्ति करं निःसहायं सहोपासनं नोगृहस्थादिधर्मैः॥
यदा नाम मुक्त्वा करोत्यन्ययोगं ततः किं॰ ॥ ३ ॥

---

१ नक्षत्राणि । २ हरे ।

हरेर्नामतुल्यो न वेदादिपाठो व्रतं तीर्थवासो न वायोः प्रयासः ॥ तदन्येषु लग्नो यदा तज्जहाति ततः किं० ॥ ४ ॥
अधर्मौघकाष्ठान्स्वभूनामवह्निर्दहत्येव सद्यः समूलाञ्जनानाम् ॥ अतः सेवितव्यं यदानेन मुक्तस्ततः किं०॥ ५ ॥
विना नाम मोक्षं न भौ सार्वभौम्ये न पैत्रे न चैंद्रे तथा ब्रह्मलोके ॥ तदर्थं यतेत्सं यदा भोगरक्तस्ततः किं० ॥ ६ ॥
अहं सोऽस्मि सोहं मनुर्वेदमूलः सदा कीर्तनीयो गुरोः प्राप्य वित्तात् ॥ विवेकादियुक्तो न तल्लप्रचेतास्ततः किं० ॥ ७ ॥
अथौंकारमंत्रो हरेर्नाम मुख्यो निदिध्यासितव्यः सदा बन्धनाशे ॥ यदुक्तं मया तेन तद्बोधता चेत्ततः किं ततः किं ततः किं नु दुःखम् ॥ ८ ॥

इति श्रीमत्परमहंसोदासीनशिरोवतंसस्वामि-
ज्ञानदासशिष्यगोपालदासाख्येन विरचितं
नाममाहात्म्याष्टकं समाप्तम् ॥ २ ॥

अभिलाषाष्टकम् ॥ ३ ॥

यतींद्रनैगमागमादिगीतकीर्तिसंचय
समस्तविश्वजातप्रपन्नदुःखमोचन ॥
मुकुंदादिलेखवंदित स्वतंत्र नंदनंदन
कदा स्वकीयदर्शनं ददासि मेऽमृतोपमम् ॥ १ ॥
सदभ्रसांद्रचिक्कणातिनीलचूर्णकुन्तल
शिखंडरुक्मरत्नमणीखचत्किरीटकुंडल ॥
मृगाक्षिकंजनेत्र मंदहाससारुणाधर
कदास्वकीय० ॥ २ ॥
कपोलगोलसुंदराननप्रभाविलज्जित

१ श्रीविष्णु । २ ब्रह्मादि । ३ देव । ४ सूक्ष्म । ५ निर्तार । ६ कुटिल । ७ मयूरपिच्छ । ८ मणि जटितोऽपि ।

प्रपूर्णचंद्रमंडल चिरेखकंबुकन्दर ॥
दरस्थकौस्तुभादिक प्रफुल्लपुष्पलंबन ।
कदास्वकीय० ॥ ३ ॥
नभस्थतारकागणप्रवेष्टहीरकांगद
प्रकोष्ठहेमकंकणांगुलीवरांगुलीयक ॥
सवेचवेणुरक्त पंचशोखकञ्जकोमल ।
कदास्वकीय० ॥ ४ ॥
तडिच्छचीशकार्मुकोपमोत्तमोत्तरीयक
दुकूलपीतमेदिनीसमुद्रमेखलाकटे ॥
कटाग्रपादलंबमाननिष्प्रवाण्यथोंऽशुक
कदास्वकीय० ॥ ५ ॥
प्रशस्तरत्नकिंकिणीपदप्रविदनूपुर-
रवाक्षरप्रसक्तधीमुनीन्द्रमानसमिव ॥
पुनर्भपमबालवृन्दरक्तकांस्यपीस्थल
कदास्वकीय० ॥ ६ ॥
नवातसीमसूनसत्रिभाभिरामभेचक
शरीरपंचमार्गणातिमोदनांगमंडन ॥
अनंतसौख्यसागराऽसमाधिकादिविग्रह
कदास्वकीय० ॥ ७ ॥
इतोप्यनल्पसौभगस्वभक्तभक्तिसंघक
त्रिलोकवैभवप्रद त्रिकर्मपाशनाशक॥
स्वकीयहृत्सरोरुहस्थ सद्गते नमोस्तुते
कदा स्वकीयदर्शनं ददासि मेऽमृतोपमम् ॥ ८ ॥
इतीदमद्भुताष्टकं निशम्य नंदनन्दनो
ददाति सन्ततं जनं प्रति स्वकीयदर्शनम् ॥

---

१ [illegible] । २ [illegible] । ३ [illegible] । ४ [illegible] । ५ [illegible] । ६ [illegible] । ७ [illegible] । ८ [illegible] । ९ [illegible] ।

कृतं गवादिपालदासनानकीयसाधुना
व्रजेशकृष्णदर्शनाभिलाषिणा सुमाथुरे ॥ ९ ॥

भावप्रकाशाष्टकम् ॥ ४ ॥

विभुश्च सत्स्वरूपकश्चितिः सुखात्मकोऽजनि-
रमूर्त्तिनामरूपकोथ तत्त्वमर्थवाहिकः ॥
विधीश्वरो हरीश्वरो रमाशिवाशिवेश्वरो
यथा फणी गुणे तथास्य विश्वकल्पनाश्रयः ॥ १ ॥
स एव धार्य्य शंतनुं सकंघनोपमं शुभं
सुपीतपट्टवाससं कलापिपिच्छमस्तकम् ॥
कृपाकटाक्षसंयुतं सुवंशवेत्रहस्तकम् ।
ममास्तु नेत्रमार्गगः कृपाकरः सदा जने ॥ २ ॥
यथा ध्रुवं च हस्तिनं ददौ स्वकीयदर्शनं
तथैव मेऽस्तु नेत्रगः कृपात आत्मदो हरिः ॥
त्वमेव भक्तवत्सलो यदा वदाम्यहं तदा
क्षुधार्त्तभोजनेऽकृते न कोपि वक्ति पालकः ॥ ३ ॥
मनश्च खानि मे सदा बहिर्भ्रमंत्यनात्मनि
ममैव नास्ति साकृतिस्तदेव कर्म तावकम् ॥
परांचि खानि माधवश्चकार नैगमी श्रुति-
स्त्वदीयकर्मवामता तवापराधता भवेत् ॥ ४ ॥
अनेकजन्मनाटयता धृतिर्मया तवाग्रतः
कृता प्रसन्नतां गतस्तदा त्वदीयदर्शनम् ॥
वरं ब्रवीम्यहं प्रभो यदा न रोचते तदा ।
षदेदृशीं न धार्यतां फलेन वर्जितां मृषा ॥ ५ ॥
तवापरोक्षता हि या ममास्ति मूलतः क्षति+
स्तदेव वांछता मया न दर्शनं ददासि मे ॥

१ इंद्रस्वामी । २ इंद्रियाणि । ३ अहि. ।

दया न लिप्यते कदापि मानसे हृते प्रभो
उपासना त्वदीयकां करिष्यतीह को नरः ॥ ६ ॥
यदि श्रुतिः प्रमाणिका महेशजीवलक्ष्ययोः
सदैकता तदा विभो त्वदीयदर्शनं भवेत् ॥
ऋतं द्वितीयतामतिस्तयोर्भयावहा यदि ।
मदीयदृश्यतां व्रजेत्परावरेश्वरेश्वरः ॥ ७ ॥
निरंजनं निरामयं निरंकुशं च निर्गुणं
स्वतो भुजिष्यवल्लभं स्वभक्तनिर्भयप्रदम् ॥
सदाप्तकामसाक्षिणं नमामि नंदनंदनं
नतिं तदीयकां विना ममास्ति नेतरद्बलम् ॥ ८ ॥
इति श्रीस्वामिज्ञानदासशिष्यगोपालदासेन
विरचितं भावप्रकाशाष्टकं संपूर्णम् ॥ ४ ॥

प्रार्थनाष्टकम् ॥ ५ ॥

मयाज्ञातं सर्वं खलु जगदिदं ब्रह्म विमलं
तथैवेह स्वात्मा निगमगुरुवाक्यादनुभवात् ॥
तथापीच्छा स्वस्य त्वयि नयनपातस्य न गता
प्रभो श्रीकृष्ण त्वं भव भव मदीयाक्षिविषयः ॥ १ ॥
ममेमामाशार्थे हरसि यदि न त्वं च विपुला-
महं भक्ताधीनो वदसि कथमित्थं मियमुधा ॥
श्रुतं धौर्य्यं[1] भक्ते तव मयि करोषीह न च किं
प्रभो श्रीकृष्ण त्वं० ॥ २ ॥
अमूल्यान्यस्वार्थे यदि तव रुचिर्नास्ति भगवन्
सतां श्रीरन्यार्था[2] क गतमिति वाक्यं च महताम् ॥
यथा मेऽस्ति प्रीतिस्त्वयि मयि तव स्वात्मनि न किं
प्रभो श्रीकृष्ण त्वं० ॥ ३ ॥

१ भृत्य । २ कारुण्यम् ।

त्वदन्यं दुःखघ्नं शरणमुपयामीव वद कं
तनूजोर्थोनारी निगमयतिवेषौ वनगतिः ॥
तव्रामासौ सर्वे निरयमिव दुःखादसुखदाः ।
प्रभो श्रीकृष्ण त्वं० ॥ ४ ॥
गजास्योयं देव्यास्ततुज उत तस्याः पतिहरः
स लोकेशांज्जातस्तदपि हरेस्तत्प्रभृतयः ॥
कलांशाः कृष्णस्तु स्वयमिति विभुर्भागवततः ।
प्रभो श्रीकृष्ण त्वं० ॥ ५ ॥
मनश्चांचल्यं मे करणकृतदोषं मनसिजं
स्मयं रोषं लोभं न च मम गतिर्द्रक्ष्यसि यदा ॥
स्वबात्सल्यं दृष्ट्वा कुरु गुरुदयां स्वात्मशरणे ।
प्रभो श्रीकृष्ण त्वं० ॥ ६ ॥
सखा सख्युर्नार्याः पतिरिव तनूजस्य जननी
क्षमस्व त्वं मेऽघं जलनिधिग काकस्य शरणम् ॥
यथा पोतादन्यं मम भवद्दते नास्ति जगति
प्रभो श्रीकृष्ण त्वं० ॥ ७ ॥
अहोऽथाहं धन्यश्चरणमणिशब्दश्रुतिगणं
बहिःश्यामं त्वंतः सितममरवाग्बुद्ध्यविषयम् ॥
यतो द्रक्ष्यामीशं रविशतसमापीडशिरसं
प्रभो श्रीकृष्ण त्वं० ॥ ८ ॥

इति श्रीस्वामिज्ञानदासशिष्यगोपाल-
दासेन विरचितं प्रार्थनाष्टकं संपूर्णम् ।

---

1 सुदर ।

पुस्तकमिलनेकाठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना-मुंबई.